संस्कृत-
संजीवनी

भारत का संविधान

भाग 4अ

नागरिकों के मूल कर्त्तव्य

अनुच्छेद 51अ

मूल कर्त्तव्य—भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह—

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में सँजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हो,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।

संस्कृत-
संजीवनी

प्रथमो भागः

एकादशवर्गीय संस्कृतस्य पाठ्यपुस्तकम्

संपादक
डॉ. कमलाकान्त मिश्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जून 2002
आषाढ़ 1924

PD 10T ML

ISBN 81-7450-067-7

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110 016	बैंगलूर 560 085	अहमदाबाद 380 014	24 परगना 743 179

प्रकाशन सहयोग

उत्पादन : एम.लाल
संपादन, : प्रमोद रावत
उ.प्र. राजेन्द्र चौहान

आवरण

बालकृष्ण

Price Rs. 16.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित ।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा शगुन ऑफसेट, 132, मोहम्मदपुर, नई दिल्ली 110 066 द्वारा मुद्रित।

पुरोवाक्

भारतीयशिक्षापद्धतौ संस्कृतस्य महत्त्वमुद्दिश्य विद्यालयेषु संस्कृतशिक्षणार्थम् आदर्शपाठ्यक्रम- पुस्तकादिसामग्रीविकासक्रमे राष्ट्रियशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषदः सामाजिक-विज्ञान-मानविकी- शिक्षाविभागेन षष्ठवर्गादारभ्य द्वादशकक्षापर्यन्तं नवीनराष्ट्रियपाठ्यचर्यानुरूपम् आदर्शपाठ्यक्रमं निर्माय संस्कृतपाठ्यपुस्तकानि निर्मीयन्ते। अस्मिन्नेव क्रमे एकादशवर्गीयच्छात्राणां कृते प्रमुखेभ्यः गद्य-पद्य-नाटक -ग्रन्थेभ्यः प्रतिनिधिभूतान् पाठ्यांशान् सङ्कलय्य भूमिका-टिप्पणी-प्रश्नाभ्यासादिना समलङ्कृत्य प्रकाश्यतेऽधुना **संस्कृतसंजीवनी (प्रथमो भागः)** नाम पाठ्यपुस्तकम्। छात्राणां सौकर्याय पूर्वनिर्धारितानां गद्य-पद्य- नाटकानां कृते त्रयाणां पुस्तकानां स्थाने साम्प्रतमेकमेव पुस्तकमिदं विरचितम्। अत्र संस्कृतसाहित्यस्य विविधविधानां गद्य-पद्य-नाटकानां परिचयप्रदानेन सह छात्रेषु नैतिकमूल्यविकासाय अपि प्रयत्नो विहितः।

पुस्तकस्यास्य प्रणयने यैः विशेषज्ञैः अनुभविभिः अध्यापकैश्च बहुमूल्यं परामर्शादिकं दत्त्वा सहयोगः कृतः, तान् सकलान् प्रति परिषदियं स्वकार्तज्ञ्यं प्रकटयति। पुस्तकमिदं छात्राणां कृते उपयुक्ततरं विधातुं सर्वेषामनुभविनां विदुषां शिक्षकाणां च सत्परामर्शाः सदैवास्माकं स्वागतार्हाः।

जगमोहनसिंहराजपूतः
निदेशकः
राष्ट्रियशैक्षिकानुसंधानप्रशिक्षणपरिषद्

नवदेहली
जनवरी, 2002

पाठ्य-पुस्तक-निर्माण-समिति

पाठ्यसामग्री-निर्माण-समिति

सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग

कमलाकान्त मिश्र,	उर्मिल खुंगर	कृष्णचन्द्र त्रिपाठी
प्रोफेसर, संस्कृत (संयोजक)	सिलेक्शन ग्रेड लेक्चरर, संस्कृत	रीडर, संस्कृत

पाण्डुलिपि-समीक्षा-संशोधन कार्यगोष्ठी के सदस्य

1. **विद्यानिवास मिश्र**
   पूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
2. **आद्याप्रसाद मिश्र**
   पूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
3. **पंकज चाँदे**
   कुलपति, कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक, नागपुर
4. **राजेन्द्र मिश्र**
   प्रोफेसर, संस्कृत विभाग हि. प्र. विश्वविद्यालय, शिमला
5. **योगेश्वर दत्त शर्मा**
   रीडर, संस्कृत हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली-7
6. **वासुदेव शास्त्री**
   प्रभारी संस्कृत (अवकाश-प्राप्त) रा.शै.अनु.प्र.सं., उदयपुर
7. **राममूर्ति वासुदेव**
   प्रोफेसर (अवकाश प्राप्त) गवर्नमेंट कॉलेज, धर्मशाला हि. प्र.
8. **शशिप्रभा गोयल**
   रीडर (अवकाश प्राप्त) रा.शै.अ.प्र.प., नई दिल्ली
9. **रविदत्त पाण्डेय**
   उपप्रधानाचार्य, (अवकाश प्राप्त) रा. उ. मा. बाल विद्यालय मानसरोवर पार्क, दिल्ली
10. **परमानन्द झा**
    पी.जी.टी. संस्कृत, रा. उ. मा. बाल विद्यालय, आदर्श नगर, दिल्ली
11. **संतोष कोहली**
    उप-प्रधानाचार्या, सर्वो. कन्या विद्या., कैलाश एन्कलेव, रोहिणी, दिल्ली
12. **कुलवन्त कौर**
    उपप्रधानाचार्या, केन्द्रीय विद्यालय, जे.एन.यू. कैम्पस, नई दिल्ली
13. **रेखा झा**
    टी.जी.टी., दिल्ली पुलिस पब्लिक स्कूल सफदरजंग एन्कलेव, नई दिल्ली
14. **दया शंकर तिवारी**
    प्रोजेक्ट फेलो, संस्कृत, सा.वि.मा.शि.वि. रा.शै.अ.प्र.प., नई दिल्ली

भूमिका

संस्कृत विश्व की अत्यंत प्राचीन भाषा है। भारतीय संस्कृति का स्रोत यही भाषा है। इसमें न केवल हमारे प्राचीन उदात्त संस्कार निहित हैं अपितु हमारा गंभीर शास्त्र-ज्ञान एवं पारलौकिक चिंतन भी इसी भाषा में उपलब्ध है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जितने ग्रंथ इस भाषा में लिखे गए हैं उतने विश्व की अन्य किसी भी प्राचीन भाषा में नहीं मिलते। संस्कृत का साहित्य ऋग्वेद काल से लेकर आज तक अबाध गति से प्रवाहित होता रहा है। वेद, व्याकरण, ज्योतिष, छंद, निर्वचन-शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति, ज्यामिति, षड्दर्शन आदि के साथ-साथ यह साहित्य कोमल काव्यानुभूतियों से ओत-प्रोत गद्य-पद्य की उर्वर जन्मभूमि है।

संस्कृत भाषा ने समस्त भारत की आधुनिक भाषाओं को प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप से पर्याप्त प्रभावित किया है। मध्यकाल में प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य को तो संस्कृत के बिना समझ पाना बहुत कठिन था। आधुनिक भारतीय साहित्य का अधिकांश भाग संस्कृत साहित्य की ही देन है। आधुनिक भारत की लगभग सभी भाषाओं ने संस्कृत से शब्दावली ग्रहण की है। विदेशों में भी संस्कृत की महत्ता बड़े आदर से स्वीकृत की गई है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा का सम्यक् अनुशीलन हो रहा है।

राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से संस्कृत का बहुत महत्त्व है। यद्यपि भारतवर्ष में क्षेत्रीय विषमताएँ एवं विविधताएँ अनंत हैं तो भी जिन तत्त्वों का इस देश को एक सूत्र में बाँधे रखने में सर्वाधिक योगदान है उनमें संस्कृत भाषा तथा इसका साहित्य प्रमुख है। पुराणों में भारत के समस्त भूगोल को इस रूप में चित्रित किया गया है कि उसे पढ़कर प्रत्येक भारतीय के मन में अपने देश के प्रति अगाध आस्था एवं श्रद्धा स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। संस्कृत साहित्य की मूल चेतना

समूचे भारतवर्ष को एक राष्ट्र के रूप में देखने की रही है। इतना ही नहीं, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (सारी पृथ्वी ही हमारा परिवार है) अथवा 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' (हम सारे विश्व को श्रेष्ठ बनाएँ) जैसी मर्मस्पर्शी उक्तियाँ मानव-मात्र के प्रति आत्मीयता के भाव व्यक्त करती हैं।

वेद सारे विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय माना जाता है। भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान नितांत महत्त्वपूर्ण है। इन्हीं की दृढ़ आधारशिला पर भारतीय धर्म एवं संस्कृति का भव्य प्रासाद प्रतिष्ठित है। भारतीयों के आचार-विचार, रहन-सहन, धर्म-कर्म आदि के रहस्यों को भलीभाँति जानने के लिए वेदों का ज्ञान परमावश्यक है। भारतीय समाज में वेद की प्रतिष्ठा सर्वाधिक है। भारतीय परंपरा में पवित्र ज्ञानराशि वेद को अपौरुषेय (मनुष्य द्वारा अरचित) तथा शाश्वत माना गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में वेदों को परमेश्वर का निःश्वास कहा गया है। भारतीयों का यह अगाध विश्वास है कि सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही वेदों का भी चिरंतन ज्ञान ऋषियों-महर्षियों को स्वतः स्फुरित होता गया। किंतु भारतीय परंपरा के विपरीत पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों का रचनाकाल निश्चित करने के अथक प्रयास किए हैं। प्रो. मैक्समूलर ने वेदमंत्रों की रचना 1200 वर्ष ई.पू., प्रो. विण्टरनिट्स ने 2000 वर्ष ई. पू. तथा प्रो. जैकोबी ने कृत्तिका नक्षत्रों की वैदिक स्थिति के आधार पर वेदमंत्रों की रचना 4500 वर्ष ई.पू. निश्चित की है। लोकमान्य तिलक के विवेचन के अनुसार यह काल और भी पूर्ववर्ती होना चाहिए। ऋग्वेद का गंभीर अध्ययन करने के बाद उन्होंने मृगशिरा नक्षत्र में वसंत सम्पात होने के अनेक संकेत एकत्रित किए। उन्हीं के आधार पर इन्होंने वेदमंत्रों की सर्वप्रथम रचना का काल 6000-4000 वर्ष विक्रम संवत् पूर्व माना।

भारतीय परंपरा के अनुसार समग्र वैदिक ज्ञानराशि पहले विभाजित नहीं थी। अतः लोकोपकार की दृष्टि से द्वापर युग के अंत में महर्षि वेदव्यास ने इसका त्रिधा विभाजन किया– ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। ऋग्वेद में स्तुतिपरक मंत्रों का संकलन किया गया। ऋक् का अर्थ होता है - स्तुति। इसी के आधार पर इस वेद का नाम ऋग्वेद रखा गया - ऋचां वेद : ऋग्वेद :। यज्ञ में उपयोगी मंत्रों

के संकलन को यजुर्वेद कहा गया। यजुष् का अर्थ है - यजन (यज्ञ) में प्रयुक्त होने वाले मंत्र। सामन् का अर्थ, देवताओं को प्रसन्न करने वाले मंत्र हैं। अतः ऐसे साममंत्रों के संकलन को सामवेद कहा गया। कालांतर में ऋक्, यजुष् और सामन् के माध्यम से तीनों रूपों में व्यवस्थित ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को त्रयी की संज्ञा से अभिहित किया गया। किंचित् काल पश्चात् महर्षि अथर्वा ने अनेकविध मंत्रों का एक पृथक् संकलन तैयार किया जो अथर्ववेद के नाम से प्रख्यात हो गया। इसमें ब्रह्म, परमात्मा, राजा, राज्यशासन, संग्राम, नाना देवता, यज्ञ, राष्ट्रीय चेतना, औषधोपचार, आधि-व्याधि निवारण आदि अनेक प्रकार के सांसारिक विषय समाविष्ट हैं।

संस्कृत काव्य की परंपरा

काव्य के बीज वैदिक सूक्तों में भी दृष्टिगोचर होते हैं। ऋग्वेद मे इंद्र, अग्नि, वरुण, मित्र, रुद्र, सवितृ, सोम, विष्णु, उषा आदि देवों की भावानुप्राणित स्तुतियाँ उपलब्ध होती हैं। ये साङ्गोपाङ्ग संस्कृत कविता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ऋग्वेद की यह कविता ही विश्व की प्रथम कविता है। इस कविता में माधुर्य का अनुपम परिपाक, प्राकृतिक सुषमा के अद्भुत चित्र तथा जनजीवन की करुण एवं रसपूर्ण संवेदनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। सूर्या तथा सोम के विवाह प्रसंग (ऋ.10.34) में प्रेम एवं सौंदर्य की तथा अक्षसूक्त में एक जुआरी के मन की गहरी व्यथा की अभिव्यक्ति किस सहृदय के मन को नहीं छूती। इसी दृष्टि से उषा-सूक्त तथा इंद्र-इंद्राणी, यम-यमी, पुरूरवा-उर्वशी आदि संवाद-सूक्त तथा मण्डूक-सूक्त उदात्त काव्योचित अभिव्यक्तियों के लिए उल्लेखनीय हैं।

वैदिक कविता ने समग्र विश्व को स्नेह, साहचर्य, सहयोग, ममता एवं विश्वबन्धुत्व की शिक्षा दी है। समान यात्रा, समान वाणी और समान चिंतन का अनुपम आदर्श हमें ऋग्वेद की कविता में दृष्टिगोचर होता है -

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।। ऋ.x.191.2

हमारे विचार समान हों, हमारी सहमति समान हो, हमारी मनोवृत्ति समान हो, समत्व का यह महामंत्र आज के युग में नितांत सार्थक है।

इसी प्रकार संपूर्ण पृथ्वी-सूक्त (अथर्व. XII.1) राष्ट्रीय अस्मिता का चूड़ांत निदर्शन है। वैदिक कवि तो पृथ्वी को ममतामयी माँ के ही रूप में देखने का अभिलाषी है। **"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः"** का उद्घोष अथर्ववेद का महामन्त्र है।

विषयवस्तु की दृष्टि से वेद का चार भागों में विभाजन किया जाता है - मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। यहाँ मंत्र का अर्थ मनन योग्य वाक्य है जो ऋग्वेद आदि संहिताओं के रूप में उपलब्ध है। इन मंत्रों की व्याख्या करने वाले भाग ब्राह्मण हैं। ये ग्रंथ यज्ञीय कर्मकाण्ड से जुड़े हैं। आरण्यक-ग्रंथों में वानप्रस्थोचित नियम तथा आचारसंहिता का उल्लेख है। उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है पारलौकिक गूढ़ रहस्यों का व्याख्यान। इस तरह वेद असीम हैं। उन्हें सही ढंग से समझने, इनके उच्चारण तथा उचित क्रियाकलापों में प्रयुक्त करने के लिए छह वेदांगों का विकास किया गया। ये हैं - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्यौतिष। ये सभी अपने-आप में स्वतंत्र शास्त्रों के रूप में विकसित हुए।

कर्मकांड एवं वानप्रस्थोचित नियमों से संबद्ध होने के कारण ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथों में कविता का प्रस्फुटन न के बराबर है। किंतु उपनिषद् वाङ्मय में काव्यधारा का एक प्रौढ़ एवं अलंकृत रूप दृष्टिगोचर होता है। उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपकादि अलंकारों से ओत-प्रोत यह कविता गूढ़तम विषयों को सरलतम शब्दों में प्रतिपादित करती है। जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपना नाम एवं रूप छोड़कर समुद्र-रूप हो जाती हैं ठीक उसी प्रकार साधक भी परब्रह्म में विलीन हो जाता है -

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तःपरात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

मु. उ. III 2.8

वैदिक कविता, निस्सन्देह आर्ष- प्रज्ञा का लीलाविलास है। यह कविता कविता के लिए नहीं लिखी गई है। इसमें तो वैदिक ऋषि गूढ़ विषयों का चिंतन करते करते अत्यंत सहृदय हो उठता है। प्रकृति सौंदर्य के नयनाभिराम दृश्य तथा लोकजीवन के मर्मस्पर्शी यथार्थ स्वतः ही वर्णनों में गुम्फित हो जाते हैं। किंतु कालांतर में वेद की यही नैसर्गिक कविता एक परिनिष्ठित ढाँचे में ढल गई जिसका निदर्शन हमें रामायण, महाभारत और पुराणों में पर्याप्त मिलता है।

रामायण की रचना का एकमात्र उद्देश्य आदर्श महामानव के चरित्र की स्थापना था। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र में भक्तवत्सल, शरणागतरक्षक, दुष्टविनाशक जैसे उदात्त गुण चरितार्थ होते हैं। उस महान् चरित्र का ही यह प्रभाव था कि रामकथा देश, काल एवं व्यक्ति की सीमाओं का अतिक्रमण करती हुई प्राचीन चम्पा, कम्बुज (कम्बोडिया), कटाह द्वीप (मलेशिया) तथा सुवर्णद्वीप (जावा,सुमात्रा, बाली)में भी प्रसिद्ध हो गई।

रामायण में यद्यपि संस्कृत कविता का भावपक्ष, अधिक प्रबल है, तथापि उसमें लोकजीवन के विविध पक्ष भी उपेक्षित नहीं है। परवर्ती संस्कृत कवियों ने रामायण को आदिकाव्य तथा वाल्मीकि को आदिकवि के नाम से अभिहित किया है। रामायण की कविता निस्सन्देह परवर्ती संस्कृत कविता के समृद्धतम रूप की प्रथम आधारशिला है।

महाभारत महर्षि व्यास की कालजयी कृति है। एक लाख श्लोकों का यह ग्रंथ विविध सूचनाओं का विश्वकोष एवं ज्ञान-विज्ञान का भण्डारग्रंथ है। मूलतः तो यह ग्रंथ कौरवों तथा पांडवों के महायुद्ध एवं विजय की कथा है, किंतु इतिहास के इस वर्णन में भी काव्यात्मकता का अद्भुत निर्वाह महर्षि वेदव्यास ने किया है। यह सत्य है कि रामायण और महाभारत भाषा, भाव, शैली तथा कथानक की दृष्टि से समग्र संस्कृत साहित्य के उपजीव्य ग्रंथ बन गए हैं।

पुराणों का रचयिता भी महर्षि व्यास को ही माना जाता है। ये पुराण संख्या में 18 हैं - मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत, वामन, वाराह, विष्णु, वायु, अग्नि, गरुड़, स्कन्द आदि इनमें प्रमुख माने जाते हैं। इन पुराणों का प्रतिपाद्य विषय तो सर्ग,

प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर आदि का विस्तृत विवेचन हैं, किंतु कविता का अजस्र प्रवाह भी इनमें यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। भागवतपुराण का वेणुगीत, गोपीगीत तथा भ्रमरगीत समूची संस्कृत कविता का श्रृंगार है। पुराण की कविता किसी भी दृष्टि से भास एवं कालिदास की रसमयी कविता से कम नहीं है। कृष्ण के विरह में व्याकुल उनकी राजरानियों का कुररी पक्षी को दिया गया निम्न उपालम्भ अन्योक्तिपरम्परा का अनुपम उदाहरण है -

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः।
वयमिव सखि किंचिद् गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन।।

(भागवत10. 90.15)

वैदिक वाड्.मय, रामायण, महाभारत एवं पुराण की ऊँची-नीची उपत्यकाओं में बहती सरस संस्कृत काव्यधारा अब भागीरथी की तरह समतलभूमि में प्रवेश कर अपने तटों पर पाणिनि, पतंजलि, कालिदास, भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष जैसे पावन तीर्थों का निर्माण करने में लग जाती है। महर्षि पाणिनि (ई.पू.5वी शती) ने चिरकाल से प्रयोग में आ रही भाषा को परिमार्जित कर उसे एक स्थिररूप प्रदान किया जिसे संस्कृत कहा जाने लगा। लोक के लिए अधिक उपयोगी, सरल एवं बोधगम्य होने के कारण ही इस भाषा को कालांतर में लौकिक संस्कृत कहा जाने लगा।

महर्षि पाणिनि- प्रणीत *'जाम्बवतीविजय'* सम्भवतः लौकिक संस्कृत भाषा का प्रथम महाकाव्य है जो कि अब उपलब्ध नहीं है। तत्पश्चात् वररुचि- प्रणीत महाकाव्य *'स्वर्गारोहण'* का उल्लेख भी मिलता है। वररुचि का काल ई.पू.चतुर्थ शती माना जाता है। पतंजलि (ई.पू. 150 वर्ष) के *महाभाष्य* से भी संस्कृत कविता के विकास के बहुमूल्य साक्ष्य मिलते हैं। वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी नामक आख्यायिकाओं का उल्लेख हमें महाभाष्य में ही मिलता है।

महाभाष्यकार पतंजलि के अनंतर संस्कृत कविता का श्रेष्ठ स्वरूप महाकवि कालिदास की कृतियों में देखने को मिलता है। वेदों से प्रारंभ काव्यधारा पुराणों के कलेवर तक जहां मुक्त वातावरण में प्रवाहित हुई वहीं उसके अनंतर

उसका विकास काव्य-लक्षणों की सीमाओं के बीच हुआ। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में आविर्भूत आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र काव्यशास्त्रीय लक्षणों का प्रथम मानक ग्रंथ है जिसमें रस, गुण, अलंकार, छंद एवं रंगमंच का सूक्ष्म विवेचन मिलता है। शैली के आधार पर कविता का गद्य, पद्य तथा चम्पू के रूप में त्रिधा विभाजन भी हमें नाट्यशास्त्र के 18वें अध्याय में मिलता है। अवांतर काल में भामह, दण्डी तथा रुद्रट आदि आचार्यों ने जैसे-जैसे काव्यशास्त्रीय तथ्यों को परिमार्जित किया वैसे-वैसे काव्यकृतियों के स्वरूप भी परिवर्तित होते गए।

ई.पू. प्रथम शती के उज्जयिनी-नरेश विक्रमादित्य के राजकवि महाकवि कालिदास ने दो महाकाव्य– *रघुवंश* एवं *कुमारसंभव,* दो खंडकाव्य– *मेघदूत* एवं *ऋतुसंहार* तथा तीन नाटक- *अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय* तथा *मालविकाग्निमित्र* की रचना की। कालिदास के युग में हुए कवियों में अश्वघोष, शूद्रक, मातृचेट, आर्यशूर, कुमारदास तथा प्रवरसेन आदि की गणना होती है। इसे संस्कृत कविता का उत्कर्ष काल माना जाता है। इस युग की कविता में भाव तथा भाषा का सुंदर समन्वय मिलता है तथा व्यजंनावृत्ति की प्रधानता है। साथ ही, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति जैसे कोमल एवं सहज अर्थालंकारों द्वारा कविताकामिनी का सर्वत्र अलंकरण मिलता है। कालिदास की कविता इस विधा का सर्वोत्तम निदर्शन है। निम्नलिखित पद्य में भाव-सौंदर्य एवं उपमा का मंजुल समन्वय द्रष्टव्य है -

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।।

रघुवंश 6.67

महाकवि भारवि (6वीं शती ई.) के साथ कालिदासोत्तर संस्कृत कविता का उदय हुआ। इस युग के प्रमुख कवि हैं - भारवि, माघ, भट्टि, रत्नाकर, श्रीहर्ष आदि। इस युग की कविता में कलापक्ष की प्रधानता दिखाई देती है। शनैः शनैः संस्कृत कविता उत्तरोत्तर अलंकारों के प्रयोग से बोझिल होती गई।

शब्दालंकारों तथा चित्रबंधों से उसकी दुरूहता, जटिलता एवं असम्प्रेषणीयता उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

प्रायः 17वीं शती ई. में पंडितराज जगन्नाथ के साथ संस्कृत कविता के कलात्मक उत्कर्ष का अध्याय पूर्ण समझ लिया जाता है। इसके बाद संस्कृत कविता दो-तीन सौ वर्षों तक सिसकती और खिसकती रही। परंतु 19वीं शती के राष्ट्रीय पुनर्जागरण के साथ उसमें भी नए जीवन और नई चेतना का संचार आरम्भ हो गया। इस युग के संस्कृत कवियों ने प्राचीन परंपराओं का परित्याग न करते हुए भी राष्ट्र के नूतन परिवेश में काव्य साधना की। पं अम्बिकादत्त व्यास, म.म. गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, मथुरानाथ शास्त्री आदि का नाम इस युग के कवियों में उल्लेखनीय है। यह स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत कविता का उदयकाल था।

एक ओर जहां संस्कृत कविता मानवीय संवेदना से जुड़कर विकसित हो रही थी वहीं दूसरी ओर विज्ञान एवं शास्त्र-चिंतन से जुड़ी दूसरी काव्यधारा भी समानांतर स्तर पर प्रवाहित हो रही थी। आयुर्वेद, रसायन, ज्योतिष जैसे वैज्ञानिक विषयों के साथ-साथ काव्य-शास्त्र, दर्शनशास्त्र, गणित, तन्त्र, संगीत, काम आदि शास्त्रों का पल्लवन भी अबाधगति से होता रहा था। ये सभी शास्त्रीय ग्रंथ प्रायः पद्यबद्ध हैं। इनमें आयुर्वेद के चरकसंहिता एवं सुश्रुतसंहिता, रसायनविज्ञान के रसरत्नाकर (नागार्जुन), रसहृदयतन्त्र (भगवत्पाद), रसरत्नसमुच्चय (वाग्भट) रसेन्द्रचूड़ामणि (सोमदेव) ज्योतिषशास्त्र के आर्यभटीय (आर्यभट) पंचसिद्धान्तिका, बृहज्जातक, बृहत्संहिता (वराहमिहिर - 505 ई.) तथा भास्कराचार्य, नीलकण्ठ, कमलाकर आदि विद्वान् उल्लेखनीय हैं।

काव्यशास्त्र के ग्रंथों में काव्यालंकार (भामह-7वीं शती ई.) काव्यादर्श (दण्डी 7वीं शती ई.), काव्यालंकार (रुद्रट) वक्रोक्तिजीवित (कुन्तक), काव्यप्रकाश (मम्मट), साहित्यदर्पण (विश्वनाथ)तथा रसगङ्गाधर (पण्डितराज जगन्नाथ) उल्लेखनीय हैं। आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र, धनंजय का दशरूपक, रामचन्द्र गुणचन्द्र का नाट्यदर्पण आदि नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। आचार्य पिङ्गल का छन्दःशास्त्र, क्षेमेन्द्र का सुवृत्ततिलक, नकुल का अश्वशास्त्र, वात्स्यायन का

कामशास्त्र, कौटिल्य का *अर्थशास्त्र* तथा मनु, याज्ञवल्क्य आदि के स्मृतिग्रंथ भी अपनी-अपनी विधाओं के मूल स्रोत हैं। वस्तुतः विज्ञान एवं शास्त्र पर आधारित संस्कृत वाङ्मय का भण्डार बहुत विशाल एवं विविध है। यहाँ केवल परिचयात्मक ज्ञान के लिए ही किंचित् सामग्री दी गई है।

संस्कृत गद्यकाव्य की परंपरा

संस्कृत गद्य की परंपरा वैदिक काल से मानी जा सकती है। तैत्तिरीय संहिता में गद्य का प्रयोग बहुल मात्रा में मिलता है। वैदिक साहित्य में ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों में संस्कृत गद्य का प्रभूत विकसित रूप पाया जाता है। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मण के कुछ गद्यमय आख्यान तो उत्तरकालीन कवियों के लिए उपजीव्य बन गए हैं। उपनिषदों में प्रयुक्त संस्कृत गद्य का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है -

'अथ ह जनको वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच भगवन् संन्यासमनुब्रूहीति। स होवाच ' याज्ञवल्क्यो ब्रह्मचर्यं समाप्य गृहीभवेत्, गृहीभूत्वा वनीभवेत्, वनीभूत्वा प्रव्रजेत्। '

वैदिक साहित्य के बाद सूत्र-साहित्य में, विशेषकर धर्मसूत्रों में संस्कृत-गद्य का विकसित रूप मिलता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी पर रचित पतंजलि का महाभाष्य गद्य में लिखा गया है। महाभारत में भी कहीं-कहीं संस्कृत-गद्य के उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलते हैं। दूसरी शती ई. में तो गद्य के विकास के प्रौढ़ प्रमाण मिल जाते हैं। इनमें रुद्रदामन् का गिरनार शिलालेख अलंकृत गद्यकाव्यशैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस काल तक गद्य काव्यधारा निश्चित रूप में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना चुकी थी। उसके बाद आर्यशूर की जातकमाला में मनोहारी गद्य का स्वरूप मिल जाता है। हरिषेण द्वारा रचित समुद्रगुप्त-प्रशस्ति में भी संस्कृत गद्य का सुंदर एवं प्रौढ़ रूप दिखाई देता है। इस तरह पांचवी शती तक आते-आते संस्कृत गद्य अपनी सभी विधाओं में प्रतिष्ठित हो चुका था। गुणाढ्य की बृहत्कथा से प्रभावित होकर *वेताल-पंचविंशतिका* जैसी

कथायें लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रतिष्ठा पा चुकी थीं। *दिव्यावदान, अवदानशतक* आदि जैसी सरस कथायें संस्कृत-गद्य को खूब पल्लवित करने लगीं। संस्कृत नाटकों में भी संवाद के रूप में गद्यकाव्य अपने वैभव को प्राप्त कर चुका था। छठी शती तक आते-आते गुण, अलंकार और रस की दृष्टि से गद्यकाव्य प्रर्याप्त समृद्ध हो चुका था। उसी काल में बाण की वाणी ने अपनी रचनाओं *हर्षचरित* और *कादम्बरी* के माध्यम से गद्यकाव्य को उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। बाण के गद्य में वर्ण-विन्यास, शब्द-प्रयोग, अर्थ-संकल्पना, भाव-सामंजस्य एवं रसमाधुर्य अपनी पराकाष्ठां पर पहुँच जाते हैं। उसके बाद के गद्यकारों में सुबन्धु, दण्डी, धनपाल, वामनभट्ट, अम्बिकादत्त व्यास आदि का नाम उल्लेखनीय है।

संस्कृत गद्यकाव्य का रूप, आधार, विषय आदि की दृष्टि से कई विधायें हैं जो इस प्रकार हैं- कथा, आख्यायिका, आख्यान, चम्पू, प्रशस्ति, अभिलेख, पत्र एवं निबंध। इनमें कथा प्राचीनतम विधा है जो कि कल्पनाप्रसूत कहानी पर आधारित होती है जैसे बाण की कादम्बरी। ऐतिहासिक विषयवस्तु को आधार बनाकर लिखे गए गद्यकाव्य को आख्यायिका कहते हैं, यथा- बाण का *हर्षचरित।* आख्यान का आकार प्रायः छोटा होता है जिसमें ऐतिहासिक तथा काल्पनिक दोनों प्रकार के विषय होते हैं। संस्कृत के आख्यान-साहित्य में *पंचतन्त्र, हितोपदेश, शुकसप्तति* आदि प्रसिद्ध हैं।

गद्य-पद्य मिश्रित काव्य को चम्पू कहा गया है। संस्कृत-साहित्य में त्रिविक्रमभट्ट का नलचम्पू, भोज का चम्पूरामायण, सोमदेवसूरि का यशस्तिलकचम्पू आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। संस्कृत के कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में प्रायः गद्यकाव्यों की रचना की है जिन्हें प्रशस्तिकाव्य के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में शिलाओं, ताम्रपत्रों तथा स्तूपों पर प्रायः शासनादेश लिखे जाते थे। इनका गद्य सामान्य गद्य से भिन्न होता था। अतः इन्हें अभिलेख गद्य का एक पृथक् भेद मान लिया गया। पत्र-लेखन भी प्राचीन काल से ही होता रहा है। संस्कृत गद्य-साहित्य की अपेक्षाकृत नवीन विधा निबंध लेखन है। संस्कृत

गद्यमय निबंधों में हृषीकेश शास्त्री की प्रबंध मंजरी, रामावतार शर्मा का *प्रकीर्ण निबंध* आदि उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत के प्रमुख गद्यकारों में आर्यशूर का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। उनका स्थितिकाल 300 ई. के आसपास माना जाता है। उनकी रचना जातकमाला में दीर्घ एवं लघु दोनों प्रकार के समासों का आदर्श समन्वय प्राप्त होता है। छठी शती में हुए दण्डी का *दशकुमारचरित* संस्कृत गद्य का उत्कृष्ट निदर्शन है। इसकी भाषा नैसर्गिक, प्रवाहपूर्ण एवं मुहावरेदार है। दण्डी का पदलालित्य प्रसिद्ध है। सातवीं शती के पूर्वार्ध में सुबन्धु ने गौड़ी शैली में *वासवदत्ता* नामक गद्यग्रंथ की रचना की जिसमें कन्दर्पकेतु और वासवदत्ता की प्रणयकथा वर्णित है। सुबन्धु ने अपनी रचना में लम्बे-लम्बे समासों, अनुप्रास तथा श्लेष अलंकार का विशेषरूप से प्रयोग किया है।

संस्कृत गद्यसाहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्ध गद्यकार बाण ही हैं। उनकी *हर्षचरित* एवं *कादम्बरी* नाम की दो रचनायें गद्यकाव्य का अलंकार मानी गई हैं। रस, अलंकार, गुण, रीति आदि के समुचित प्रयोग के कारण *कादम्बरी* संस्कृत की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। त्रिविक्रमभट्ट की *नलचम्पू* सरस एवं प्रसादपूर्ण रचना है। इसमें सभङ्ग श्लेष एवं अभङ्ग श्लेष की प्रधानता है। धनपाल की *तिलकमंजरी*, बाण की शैली में लिखी गई है। इसकी भाषा पर्याप्त प्रांजल एवं शैली दुरूहता से रहित है। 11वीं शती के सोड्ढल की *उदयसुन्दरीकथा* गद्यबाहुल्य के कारण गद्यकाव्य में गिनी जाती है। इसमें पदसौष्ठव तथा आरोह स्पष्ट प्रतीत होते हैं। 19 वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए अम्बिकादत्त के गद्यकाव्य *शिवराजविजय* में छत्रपति शिवाजी का जीवन-वृत्त चित्रित है। इसमें यत्र-तत्र बाण की शैली का अनुकरण है। सम्पूर्ण गद्यकाव्य राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है।

संस्कृत भाषा में गद्य-रचना कम हुई है फिर भी विभिन्न कालों में कवियों ने गद्यकाव्य की रचना में अपना कौशल प्रदर्शित किया है। आधुनिक काल के गद्यकारों में पण्डिता क्षमाराव (1890 -1954 ई.) का नाम अग्रणी है। उन्होंने *कथामुक्तावली, विचित्रपरिषद्यात्रा* इत्यादि कई गद्य-काव्य लिखे हैं। इनके अतिरिक्त

मथुरानाथ शास्त्री, हृषीकेश भट्टाचार्य, नवलकिशोर काङ्कर आदि के नाम भी आधुनिक गद्यसाहित्य में उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत नाट्यसाहित्य की परम्परा

नाटक संस्कृत काव्य का सुन्दरतम रूप माना गया है - **'काव्येषु नाटकं रम्यम्'**। दर्शकों द्वारा देखे जाने के कारण इसे दृश्यकाव्य भी कहा जाता है। नाट्य की महिमा बतलाते हुए भरतमुनि ने लिखा है कि संसार का ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नहीं है, जो इसमें न आता हो।' महाकवि कालिदास ने भी कहा है कि 'नाटक भिन्न-भिन्न रुचि के लोगों के लिए मनोरंजन का एक सामान्य साधन है'। इसीलिए नाटक को संस्कृत काव्य की चरमपरिणति माना जाता है - **'नाटकान्तं कवित्वम्'**। सभी प्रकार के काव्यरूपों में नाटक अपेक्षाकृत अधिक जनप्रिय होते हैं, क्योंकि इनमें मनोरंजन, रस-भावाभिव्यक्ति और विषय की विविधता अधिक पाई जाती है।

नाटक की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं। भारतीय परंपरा नाटक को पंचम वेद मानती है। महामुनि भरत के अनुसार ब्रह्मा ने चारों वेदों का ध्यान करके ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लेकर 'नाट्यवेद' नामक पंचम वेद की रचना की। कई विद्वानों ने ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों में संस्कृत नाटकों का प्रारंभिक रूप देखा है। इन सूक्तों में *इन्द्र-मरुत्, अगस्त्य-लोपामुद्रा, विश्वामित्र-नदी, वसिष्ठ-सुदास, यम-यमी, इंद्र-इंद्राणी, पुरूरवा-उर्वशी, सरमा-पणि* आदि के संवाद बहुत प्रसिद्ध हैं। ये संवादात्मक सूक्त नाटकीय माने गए हैं। पाश्चात्त्य विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति के संबंध में पुत्तलिका-नृत्य, स्वाँग, छायानाटक, वीरपूजा आदि के सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं।

नाटक के विकास के लिए अपेक्षित तत्त्व गीत, वाद्य,अभिनय, संवाद आदि की सत्ता वैदिक काल में भी थी। रामायण और महाभारत में नट, नर्तक, नाटक आदि के प्रयोग से सिद्ध होता है कि उस युग में भी नाटकों का प्रचलन

था। ईसापूर्व दूसरी शती में पतंजलि ने अपने महाभाष्य में कंसवध और बलिबन्ध नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है। ईसापूर्व पाँचवीं शती में पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में दो नटसूत्रों का उल्लेख किया है। ऐसा भी कहा जाता है कि पाणिनि ने *जाम्बवतीविजय* नामक नाटक की रचना भी की थी। अशोक के शिलालेखों में भी नट और समाज का उल्लेख मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि भारत में नाट्य-परंपरा अत्यंत प्राचीन काल से है।

संस्कृत नाट्यसाहित्य में सबसे प्राचीन रचनायें महाकवि [illegible] की मिलती हैं। इनका समय चौथी- पांचवीं शती ई.पू. के लगभग माना जाता है। इन्होंने तेरह नाटकों की रचना की जिनमें *स्वप्नवासवदत्त, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, प्रतिमानाटक, पंचरात्र, दूतवाक्य, कर्णभार* आदि प्रसिद्ध हैं। इनके बाद शूद्रक का *मृच्छकटिक* उल्लेखनीय है।

महाकवि कालिदास का नाम संस्कृत नाट्यसाहित्य में सर्वोपरि है। इन्हें कविकुलगुरु भी कहा जाता है। इनका *अभिज्ञानशाकुन्तल* अनेक भारतीय एवं पाश्चात्त्य भाषाओं में अनूदित हो चुका है। इसमें आदर्श भारतीय जीवन का वर्णन है। *मालविकाग्निमित्र* और *विक्रमोर्वशीय* कालिदास के दो अन्य प्रसिद्ध नाटक हैं। कालिदास की शैली सरल, सरस, मधुर, प्रसाद तथा लालित्य गुणों से सम्पन्न है।

कालिदास के बाद अश्वघोष, विशाखदत्त, दिङ्नाग, भट्टनारायण, भवभूति, हर्ष आदि का नाम संस्कृत नाट्यसाहित्य में उल्लेखनीय है। इनमें भवभूति का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उन्होंने तीन नाटकों की रचना की है - *मालतीमाधव, महावीरचरित* और *उत्तररामचरित*। इनमें उत्तररामचरित सर्वश्रेष्ठ है। यह वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा पर आधारित है। इसमें करुण रस की अत्यंत सुंदर एवं मार्मिक निष्पत्ति देखने योग्य है। भवभूति में यद्यपि कालिदास की सी सरलता और सहजता नहीं है फिर भी नाट्यसाहित्य में उन्हें कालिदास के समान ही सम्मान मिलता है। आदर्श वैवाहिक जीवन के चित्रण में भवभूति पारंगत हैं। राम और सीता के कोमल एवं पवित्र प्रेम का चित्रण भी उत्तररामचरित की विशिष्टता है।

संस्कृत नाटकों की प्रमुख विशेषता उनका सुखांत होना है। सम्पूर्ण नाटक में यद्यपि सुख और दुःख का सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है, तो भी उसका अंत सुखांत ही होता है। सुख के उपपादन के लिए ही नाटक में दुःख का निष्पादन होता है। इसके पीछे भारतीय चिंतन ही मुख्यतः प्रधान है। प्राचीन भारत के निवासी आशावादी थे। उनके अनुसार जीवन में दुःख-क्लेश की परिणति सदैव सुख और परमानंद में होती है।

संस्कृत नाटकों में संवाद के लिए प्रायः गद्य का ही प्रयोग होता है परंतु रोचकता, प्रकृतिवर्णन, नीतिशिक्षा आदि के लिए पद्य के प्रयोग को महत्त्व दिया जाता है। संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत भाषाओं का प्रयोग भी संस्कृत नाटकों में मिलता है। सभी प्रकार के पात्र संस्कृत समझते तो हैं, किंतु अपने-अपने सामाजिक स्तर के अनुरूप संस्कृत या प्राकृत बोलते हैं। नायक के मित्र के रूप में विदूषक की कल्पना संस्कृत नाटकों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। इन नाटकों में अभिनय संबंधी संकेत,यथा - प्रकाशम्, स्वागतम्, जनांतिकम्, सरोषम्, विहस्य इत्यादि सूक्ष्मता के साथ दिए जाते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ नैतिकता और उच्च आदर्शों का जनमानस में संचार करना भी संस्कृत -नाटकों का एक लक्ष्य है। लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार के पात्र इनमें होते हैं और प्रकृति-वर्णन संस्कृत-नाटकों की एक बहुत बड़ी विशेषता है।

प्रस्तुत संकलन

संस्कृत के अखिल भारतीय महत्त्व को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर वैकल्पिक विषय के रूप में संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों के लिए प्रस्तुत संकलन का संपादन किया गया है। इससे पूर्व एकादश, द्वादश वर्ग की कक्षाओं के लिए गद्य, पद्य एवं नाटक की स्वतंत्र पुस्तकों का प्रावधान था। विगत वर्षों में परिषद् द्वारा प्रकाशित विद्यालयीय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000 के आधार पर विद्यालयों के लिए विकसित, नये पाठ्यक्रम के अनुरूप पाठ्यपुस्तकों

के संशोधन/परिवर्तन के क्रम में यह अनुभव किया गया कि संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं के पृथक्-पृथक् संकलन के स्थान पर केवल एक ऐसा संकलन तैयार किया जाए जो एकादशवर्गीय कक्षा के छात्रों की वर्तमान अपेक्षाओं को पूर्ण करता हो तथा संस्कृत साहित्य की प्रमुख विधाओं - गद्य, पद्य एवं नाटक का प्रतिनिधित्व करता हो। तदनुसार 'संस्कृत-संजीवनी' नामक यह नवीन संकलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत संकलन में दस पाठ हैं। इनमें प्रथम पाठ **वेदामृतम्** में ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद से मंत्रों को संकलित किया गया है। विश्वशांति, विश्वबंधुत्व और राष्ट्रप्रेम की दृष्टि से ये मंत्र छात्रों के लिए एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करते हैं। द्वितीय पाठ **'प्रकृतिः कस्य न प्रिया'** में **वाल्मीकिरामायण** के किष्किंधा, अरण्य एवं सुंदर कांडों से 12 श्लोक संकलित हैं। इनमें वसंत, वर्षा, शरद् एवं हेमंत तथा चंद्रोदय का अत्यंत सुंदर चित्रण है। प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से इस पाठ का बहुत महत्त्व है। तृतीय पाठ **पाण्डवप्रत्यभिज्ञानम्** - भास के *पंचरात्रम्* नामक एकांकी से संकलित है। इसमें पाँच रातों में पाण्डवों के मिलने तथा दुर्योधन द्वारा उन्हें आधा राज्य दिए जाने का वर्णन है। संस्कृत नाटक की क्रियाबहुलता, अभिनेयता आदि विशिष्ट लक्षणों को समक्ष उपस्थित करने की दृष्टि से यह पाठ छात्रोपयोगी है। चतुर्थ पाठ पतंजलि के *महाभाष्य* से संकलित है। प्रस्तुत पाठ में आकर्षण सिद्धान्त का बड़ा सूक्ष्म चित्रण है। प्राचीन संस्कृत गद्य के निदर्शन के रूप में यह पाठ छात्रोपयोगी है। पंचम पाठ **परोपकाराय सतां विभूतयः** - आर्यशूर की *जातकमाला* से संकलित है। इसमें मत्स्य के रूप में बोधिसत्त्व के परोपकार की घटना का सुन्दर चित्रण है। छठा पाठ - **सौवर्णशकटिका** - शूद्रक के *मृच्छकटिक* के छठे अंक से संकलित है। इसमें बालसुलभ लालसा का बड़ा मार्मिक चित्रण है। सप्तम पाठ - **स्वभावो हि दुरतिक्रमः** में हितोपदेश से नीलवर्ण शृगालकथा संकलित है। अष्टम पाठ - **आहारगुणाः** चरकसंहिता के 'रस विभाग' नामक प्रथम अध्याय से संकलित है। नवम पाठ - **प्रबन्धकौशलम्** में दशकुमारचरित की गोमिनी कथा को संकलित किया गया है। दशम पाठ **मानो हि महतां धनम्** महाभारत के उद्योगपर्व से संगृहीत है।

संकलन के सभी पाठों में विभिन्न मानवीय भावों का कुशलता से चित्रण किया गया है। मानवमूल्यों की स्थापना, सहज आंतरिक आकर्षण, परोपकार, बालमनोविज्ञान, आहार की महत्ता एवं प्रबन्धदक्षता की दृष्टि से ये पाठ छात्रों के लिए शिक्षाप्रद एवं उपयोगी हैं। इसके अतिरिक्त इस संकलन का उद्देश्य छात्रों को संस्कृत के प्रसिद्ध तथा महान् साहित्यकारों से परिचित करवाना भी है। इसके साथ-साथ उनकी सौन्दर्यानुभूति का विकास करवाना भी इस संकलन का लक्ष्य है।

संस्कृत साहित्य की विशाल परम्परा से इस संकलन में वेद, काव्य, गद्य तथा नाटक से प्रतिनिधिभूत अंश संकलित हैं। जिन ग्रंथों से ये पाठ्यांश संकलित हैं उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया गया है -

ऋग्वेद : ऋग्वेदसंहिता में स्तुतिपरक तथा अर्चनाप्रधान मंत्रों का संकलन किया गया है। यह विश्व का प्रथम व्यवस्थित उपलब्ध ग्रंथ है जिसमें सप्तसिन्धु-प्रदेश में रहने वाले आर्यों के धार्मिक विचारों एवं दार्शनिक भावनाओं का काव्यात्मक चित्रण है। ऋग्वेद के समय में भारतवर्ष की जो सांस्कृतिक चेतना थी वह आज भी भारतीय मानस में विद्यमान है। इससे संस्कृत की धारा के सतत प्रवाह की पुष्टि होती है। आर्यों की एक लम्बी बौद्धिक परंपरा का दिग्दर्शन ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। इस वेद के सूक्तों के बहुत बड़े भाग में अग्नि, इंद्र, सविता, रुद्र, मित्र, वरुण, सूर्य, मरुत् आदि देवताओं की प्रार्थना है। धार्मिक दृष्टि से रचित सूक्तों की संख्या इस संहिता में अवश्य ही सर्वाधिक है। यह मंडल, अध्याय तथा सूक्त रूप में विभक्त है। इसमें 10580 मंत्र एवं 1028 सूक्त हैं।

यजुर्वेद : इसमें यज्ञ में उपयोगी मंत्रों का संकलन है। इस तरह यह अनुष्ठान-विषयक संहिता है। इन यज्ञों में दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, सोमयाग, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध आदि प्रमुख हैं। यजुर्वेद में कुछ मंत्र पद्यात्मक हैं तथा कुछ गद्यात्मक हैं। गद्यात्मक मंत्र राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हैं। कर्मकांड में उपयोगी होने के कारण यजुर्वेद अन्य सभी वेदों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हैं।

सामवेद : इस संहिता से कोई मंत्र तो नहीं लिया गया है फिर भी सामान्य परिचय की अपेक्षा से यहाँ उल्लेख कर दिया गया है। सामवेद का महत्त्व संगीत की दृष्टि

से बहुत अधिक है। इससे ज्ञात होता है कि भारतीय संगीत का उद्भव किन स्रोतों से हुआ।

अथर्ववेद : अथर्ववेद के मन्त्रों का द्रष्टा ऋषि अथर्वा है। यह 20 कांडों में विभक्त है। इस वेद में मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, औषधि, राजनीति, राज्यपालन और ईश्वराराधन के बड़े ही उपयोगी मंत्र संगृहीत हैं। अथर्ववेद को सर्वाधिक मानवोपयोगी वेद माना गया है। जीवन के प्रायः सभी पक्षों का स्पर्श इसमें हुआ है, किंतु विशेष रूप से तत्कालीन विश्वासों एवं प्रचलित तंत्र-मंत्र आदि का प्रकाशन इसमें अधिक है। इसी क्रम में अभिचार से संबद्ध क्रियाओं का निरूपण है। शत्रुनाश, आरोग्य-प्राप्ति, गृह-सुख, भूत-प्रेतों का निवारण, कीट-पंतगों का नाश, इष्ट वस्तु का लाभ, विवाह, वाणिज्य, पितृपूजा आदि का विवेचन अथर्ववेद के मंत्रों में हैं। विविध रोगों का स्वरूप बतलाकर उनके निवारण की व्यापक विधि भी इसमें दी गई है।

रामायण : रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि संस्कृत काव्य के आदिकवि माने जाते हैं और उनकी कृति आदिकाव्य। इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम का पावन चरित वर्णित है। यह काव्यकृति सात कांडों में विभक्त है और इसमें 24,000 श्लोक हैं। कई अर्थों में यह कृति संस्कृत-कविता के नवीन युग का सूत्रपात करती है। महर्षि वाल्मीकि ने एक ओर तो संस्कृत कविता के उच्च मानवीय जीवन-मूल्य प्रस्तुत किए हैं, तो दूसरी ओर कविता के नये कलात्मक रूपों का भी सूत्रपात किया है।

लोक-जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण, उदात्त जीवन-मूल्य, जड़-चेतन का समन्वय तथा विविध सांस्कृतिक धाराओं का सम्मिश्रण रामायण के प्रमुख प्रतिपाद्य बिंदु हैं। रामायण के नायक मर्यादापुरुषोत्तम की पितृभक्ति, भ्रातृस्नेह, शरणागतप्रेम, मैत्रीभाव आदि दिव्यगुण भारतीय संस्कृति के निर्माण में अतीव सहायक सिद्ध हुए हैं। इस तरह राम का पावन चरित्र परवर्ती युग में उदात्त जीवनादर्शों का आधार बनता चला गया और इस आदिकाव्य को उत्तरोत्तर जनप्रिय बनाता गया है।

पंचरात्र : महाकवि भास ने तेरह नाटक लिखे हैं, जिनमें पंचरात्र एक है। यह एक रूपक है जिसमें महाभारत की कथा को आधार बनाया गया है। इसमें पाँच रातों में पांडवों के मिलने तथा दुर्योधन द्वारा आधा राज्य दिए जाने की घटना वर्णित है। भाषा की सरलता, छोटे-छोटे वाक्यों के प्रयोग एवं अभिनेयता आदि की दृष्टि से यह रूपक बहुत महत्त्वपूर्ण है। भास की कल्पनाशक्ति तथा कथानक को सजाने का कौशल उत्कृष्टतम है।

महाभाष्य : यह पतंजलि - प्रणीत एक व्याकरण ग्रंथ है जिसमें पाणिनि के सूत्रों तथा उन पर लिखे वार्तिकों की आलोचनात्मक विस्तृत व्याख्या है। इसके द्वारा पाणिनि का व्याकरण सर्वांगपूर्ण एवं विशद बन गया है। इस महाभाष्य की भाषा सरल और शैली रोचक है।

जातकमाला : आर्यशूर ने तीसरी-चौथी शती में संस्कृत में जातकमाला की रचना की। इसमें कुल 34 जातक हैं। 'जातक' शब्द का अर्थ है पूर्व जन्म संबंधी कथा। इन जातकों में बोधिसत्त्व के पूर्व जन्म के सद् वृत्तान्तों की कथा सरल, गद्यमय संस्कृत में उपनिबद्ध है। लोक-कल्याण एवं परोपकार की भावना को प्रतिपादित करने वाली इन कथाओं के माध्यम से बौद्ध विद्वान् आर्यशूर ने बौद्ध सिद्धांतों की स्थापना के लिए ही इस ग्रंथ की रचना की है।

मृच्छकटिक : संस्कृत नाट्य-साहित्य में शूद्रक और उनकी नाट्यकृति मृच्छकटिक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्व की विभिन्न भाषाओं में इस नाटक का अनुवाद हो चुका है। इस नाटक की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके पात्र कालिदास तथा भवभूति के पात्रों की तरह विशुद्ध भारतीय न होकर विश्व के नागरिक हैं। दरिद्र चारुदत्त, सदाचारिणी गणिका, वसंतसेना, वीर शर्विलक तथा उन्मत्त शकार ऐसे व्यक्ति हैं जो विश्व के हर समाज में मिलते हैं। मृच्छकटिक में सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण है।

हितोपदेश : नारायण पंडित ने पंचतंत्र के आधार पर नीति-कथाओं का संग्रह करके हितोपदेश की रचना की। हितोपदेश में चार परिच्छेद हैं - मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि। इसमें अनेक रोचक और शिक्षाप्रद श्लोक आए हैं।

चरकसंहिता : चरकप्रणीत यह ग्रंथ चिकित्साशास्त्र का प्रसिद्ध एवं प्राचीन ग्रंथ है। इस संहिता में आहार, रोग, रोग-विज्ञान, शरीर-विज्ञान, भ्रूण-विज्ञान, निदान, विशेष एवं सामान्य चिकित्सा का विज्ञान वर्णित है। यह रचना गद्य एवं पद्य दोनों में है।

दशकुमारचरित : दण्डी-प्रणीत यह एक अद्‌भुत कथा-काव्य है। इस में दस राजकुमारों की अनेक रोमांचक घटनायें वर्णित हैं जिनमें एक सामान्य समाज का चित्रण है। दण्डी की सबसे बड़ी विशेषता सरल और ललितपदों से युक्त गद्य लिखने में है। वे लंबे-लंबे समासों और कठोर ध्वनियों से दूर रहते हैं। दण्डी का पद-लालित्य संस्कृत साहित्य में विख्यात है।

महाभारत : महर्षि वेदव्यासप्रणीत अद्‌भुत काव्य ग्रंथ है। इसको पुराण भी कहा जाता है। इतिहास का भी इसमें अलौकिक समावेश है। वाल्मीकिरामायण की भाँति इसमें अधिकतर अनुष्टुप् छंद का प्रयोग किया गया है। इसके विषय में सूक्ति प्रसिद्ध है **'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'** अर्थात् इस ग्रंथ में सभी प्रकार के साहित्यिक तत्त्वों का समावेश है। जो इसमें है वही अन्यत्र है। इससे भिन्न कुछ और नहीं है।

पुस्तक के आरंभ में दी गई भूमिका द्वारा छात्रों को संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास के संक्षिप्त इतिहास का परिचय करवाया गया है। इसके साथ-साथ निर्धारित पाठों के मूलग्रंथ एवं उनसे संबंधित साहित्यकारों का परिचयात्मक ज्ञान भी इसमें समाविष्ट है। पाठ के आरंभ में पाठ-संदर्भ दिया गया है जिससे संकलित अंश का प्रसंग सरलता से छात्रों को बोधगम्य हो सके। कक्षा में छात्रों को सीखने के अधिक अवसर प्रदान करने के लिए पाठों के अंत में विविध अभ्यास प्रश्न भी दिए गए हैं। पुस्तक में आए छंदों तथा अलंकारों का परिचय भी परिशिष्ट 1 तथा 2 में दिया गया है।

प्रस्तुत संकलन की पांडुलिपि को तैयार करने के लिए समय-समय पर आयोजित कार्यगोष्ठियों में भाग लेने वाले जिन विषय-विशेषज्ञों एवं संस्कृत अध्यापकों का मार्गदर्शन तथा सहयोग सुलभ हुआ है, संपादक उन सभी विद्वानों

के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है। यद्यपि इस संकलन को यथासंभव छात्रोपयोगी एवं स्तर के अनुरूप बनाने का प्रयास किया गया है तथापि इसे छात्रों के लिए और अधिक उपयोगी बनाने के लिए अनुभवी संस्कृत अध्यापकों के बहुमूल्य सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

विषयानुक्रमणिका

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

प्रथमः पाठः

वेदामृतम्

भारतीय वैदिक वाङ्मय संपूर्ण विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय होने के साथ मनुष्य की अंतश्चेतना से फूटी उदात्त कविता का भी प्रथम निदर्शन है। वैदिक काव्य में विश्वशांति, विश्वबंधुत्व, लोकतांत्रिक मूल्य, निर्भयता तथा राष्ट्रप्रेम का संदेश भरा पड़ा है जो आज के वातावरण में पहले से भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है।

प्रस्तुत पाठ में वही वैदिक काव्य का अमृततत्त्व संकलित किया गया है - ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद से। इन कविताओं में अत्यंत उदात्त एवं अनुकरणीय आदर्श विद्यमान है।

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।।1।। (ऋ. 10-191-2)

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।2।। (ऋ. 10-191-4)

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।।3।। (ऋ. 1-90-7)

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमञ्ज्योतिषां ज्योतिरेकं

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।4।। (यजु. 34.1)

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्।
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतम्
अदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।5।।(यजु. 36-24)

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसम्
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां
ध्रुवेव धेनुरनुपस्फुरन्ती।।6।। (अथर्ववेदः पृथिवीसूक्तम् 12.1.45)

शब्दार्था : टिप्पण्यश्च

सङ्गच्छध्वम्	–	सङ्गताः संभूताः भवत। सम् पूर्वक गम् धातुः आत्मनेपद लोट् म.पु., बहु.व., साथ चलें।
संवदध्वम्	–	परस्परं विरोधं परित्यज्य एकविधमेव वाक्यं ब्रूत, इति। परस्पर विरोध छोड़कर समान स्वर से एक समान बोलें।
वः (युष्माकम्)	–	तुम्हारा।
मनांसि	–	मन।
संजानताम्	–	समानमेकरूपमेवार्थम् अवगच्छन्तु, समान रूप से अर्थ बोध करें।
पूर्वे देवाः	–	पुरातनाः देवाः, पूर्वकाल के देवगण।
संजानानाः	–	ऐकमत्यं प्राप्ताः, एकमत होकर।
भागम् उपासते	–	हवि के भाग को स्वीकार करते हैं।
आकूतिः	–	संकल्पः, अध्यवसायः, संकल्प।
समाना	–	समानानि, एकविधानि, समान।

सुसह	–	शोभनं साहित्यम्, संगतिः।
असति	–	भवतु (तुम्हारी सुंदर संगति हो जाए)।
मधु	–	माधुर्योपेतम्, माधुर्य से भरी।
ऋतायते	–	ऋतं (यज्ञं) आत्मनः इच्छते यजमानाय, अपने लिए यज्ञ की कामना करने वाले यजमान के लिए
सिन्धवः	–	नद्यः, समुद्राः वा नदियाँ अथवा समुद्र।
ओषधीः	–	फलपाकान्ता ओषधयः, फल के पकने पर जो पौधे नष्ट हो जाते हैं, उन्हें औषधि कहते हैं।
जाग्रतः	–	जागते हुए के।
दूरम् उदैति	–	दूर भाग जाता है।
तदु दैवम् (मनः)	–	तद् दिव्यज्ञानयुक्तं मनः, वही दिव्य विज्ञान युक्त मन।
ज्योतिषाम्	–	इन्द्रियाणाम्, विषयों का प्रकाशन करने वाली इंद्रियों में।
दूरं गमम्	–	सर्वाधिक दूर तक पहुँचने वाली, एकमात्र प्रकाशक।
शिवसंकल्पम्	–	शिवाः संकल्पाः यस्य तत्, मंगलमय, कल्याणकारी विचारवाला।
देवहितम्	–	देवैः स्थापितम्, देवताओं द्वारा स्थापित।
शुक्रम्	–	दिव्य, चमकीला।
चक्षुः	–	नेत्र अर्थात् सूर्य।
पुरस्तात्	–	पूर्वदिशायाम्, पूर्व दिशा में।
उच्चरत्	–	उदितः जातः, उदय हुआ है।
शरदः	–	वर्ष।
शतम्	–	सौ (जीवित रहें)।
अदीनाः	–	न दीनाः, दैन्यात् रहिताः, दीनता से रहित।
भूयश्च शरदः शतात्	–	पुनः पुनः शतात् शरदः एवमेव भवेत्, बार - बार सौ वर्षों से भी अधिक यही स्थिति बनी रहे।
बिभ्रती	–	धारण करती हुई।
विवाचसम्	–	विभिन्न भाषा वाले।

यथौकसम्	–	धारण करने वाले घर के समान ।
दुहाम्	–	दुहना।
अनुपस्फुरन्ती	–	कंपन रहित।

अभ्यासः

1. **संस्कृतभाषया उत्तरत**
   (क) सङ्गच्छध्वम् इति मन्त्रः कस्मात् वेदात् संकलितः?
   (ख) अस्माकम् आकूतिः कीदृशी स्यात्?
   (ग) अत्र मन्त्रे 'यजमानाय' इति शब्दस्य स्थाने कः शब्दः प्रयुक्तः?
   (घ) अस्मभ्यम् इति कस्य शब्दस्य अर्थः?
   (ङ) ज्योतिषां ज्योतिः कः कथ्यते?
   (च) माध्वीः काः सन्तु?
   (छ) पृथिवीसूक्तम् कस्मिन् वेदे विद्यते?
2. **अधोलिखितक्रियापदैः सह कर्तृपदानि योजयत**
   (क) .... संजानानाः उपासते।
   (ख) .... मधु क्षरन्ति।
   (ग) मे .... शिवसंकल्पम् अस्तु।
   (घ) .... शतं शरदः श्रृणुयाम।
3. **शुद्धं विलोमपदं योजयत**

जाग्रतः	वः
नः	अदीनाः
दीनाः	सुप्तस्य

4. **अधोलिखितपदानां परिचयम् अर्थं च लिखत**
   उपासते, सिन्धवः, सवितः,जाग्रतः, पश्येम।
5. (क) वेदे प्रकल्पितस्य समाजस्य आदर्शं स्वरूपम् पञ्चवाक्येषु चित्रयत।
   (ख) मनसः किं वैशिष्ट्यम्?
6. **पश्येम, श्रृणुयाम, प्रब्रवाम, इति क्रियापदानि केन इन्द्रियेण सम्बद्धानि।**

द्वितीयः पाठः

प्रकृतिः कस्य नो प्रिया

प्रस्तुत पाठ आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण के किष्किंधा, अरण्य तथा सुंदर कांडों से संकलित है। रामायण संस्कृत साहित्य का आदि महाकाव्य माना जाता है। इस ग्रंथ का सांस्कृतिक महत्त्व बहुत अधिक है। इसमें महर्षि वाल्मीकि ने जीवन के आदर्शभूत और शाश्वत मूल्यों का निर्देश किया है। इसमें राजा, प्रजा, पुत्र,माता, पत्नी, पति, सेवक आदि के पारस्परिक संबंधों का एक आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इस महाकाव्य में वाल्मीकि का प्रकृति-चित्रण अत्यंत मनोरम एवं हृदयाकर्षक है।

इस पाठ में 1-3 श्लोकों में वसंत ऋतु का, 4-6 श्लोकों में वर्षा ऋतु का, 7वें एवं 8वें श्लोक में शरद् ऋतु का तथा 9-11 श्लोकों में हेमंत ऋतु का विशद एवं मनोहारी वर्णन किया गया है। श्लोक संख्या 12 में चंद्रोदय का अत्यंत सुंदर वर्णन किया गया है।

सुखानिलोऽयं सौमित्रे ! कालः प्रचुरमन्मथः।
गन्धवान् सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः।। 1।।
पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः।
लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः।।2।।
पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे ! क्रीडन्निव समन्ततः।।3।।

- वा.रा.किष्किन्धा. 1.10,9,13

क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं
नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति।
क्वचित्क्वचित्पर्वतसन्निरुद्धं
रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य।।4।।
समुद्वहन्तः सलिलाऽतिभारं
बलाकिनो वारिधरा नदन्तः।
महत्सु शृङ्गेषु महीधराणां
विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति।।5।।

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः।।6।।

- वा.रा.किष्किन्धा. 28.17,22,26

जलं प्रसन्नं कुसुमप्रहासं
क्रौञ्चस्वनं शालिवनं विपक्वम्।
मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः
शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम्।।7।।
लोकं सुवृष्ट्या परितोषयित्वा
नदीस्तटाकानि च पूरयित्वा।
निष्पन्नशस्यां वसुधां च कृत्वा
त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रयाताः।।8।।

- वा.रा.किष्किन्धा. 30, 53,57

रविसङ्क्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते।।9।।

वाष्पसञ्छन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः।
हिमार्द्रबालुकास्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम्।।10।।

- वा.रा.अरण्य 16,9,13,24

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थ -
श्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः।।11।।

- वा.रा.सुन्दर 5,4

शब्दार्थाः टिप्पणयश्च

रविसंक्रान्तसौभाग्यः	—	रविणा सूर्येण संक्रान्तं ध्वस्तं सौभाग्यं प्रकाशः यस्य सः, सूर्य के द्वारा जिसका प्रकाश मलिन कर दिया गया है।
तुषारारुणमण्डलः	—	तुषारेण हिमेन अरुणः अरुणवर्णः मण्डलः यस्य सः। तुषार के समान जिसका मण्डल अरुण वर्ण कर दिया गया है।
निःश्वासान्धः	—	श्वास से मलिन किया गया।
आदर्शः	—	दर्पण।
सुखानिलः	—	आनंद देने वाली हवा।
मन्मथः	—	कामदेव।
गन्धवान्	—	सुगंध देने वाली (गन्ध्+मतुप् प्र.,ए.व.)।
सुरभिर्मासः	—	वसंत ऋतु।
समन्ततः	—	चारों ओर से।
पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि	—	खिले हुए फूलों से भरी हुई।
पतितैः	—	गिरे हुए।

पतमानैः	—	गिरते हुए।
पादपस्थैः	—	पेड़ों पर स्थित।
प्रकीर्णाम्बुधरः	—	आकाश जिसमें बादल फैले हैं (प्रकीर्णाः अम्बुधरा यस्मिन् सः)।
विभाति	—	शोभा दे रहा है (वि+भा+लट् प्र.पु.ए.व.)।
पर्वतसन्निरुद्धम्	—	पर्वतों से घिरे हुए।
महार्णवम्	—	समुद्र।
समुद्वहन्तः	—	वहन करते हुए (सम्+उत्+वह्+शतृ प्र.ब.व.)।
वलाकिनः	—	बगुलों से युक्त।
नदन्तः	—	गरजते हुए (नद्+शतृ+प्र.ब.व.)।
समाश्वसन्ति	—	सांस लेते हैं (सम्+आ+श्वस्+लट्+प्र.ब.व.)।
वनान्ताः	—	वनप्रदेश के एक भाग में।
शिखिनः	—	मोर।
प्लवङ्गमाः	—	मेंढक।
कुसुमप्रहासम्	—	खिले हुए फूलों से युक्त।
क्रौञ्चस्वनम्	—	क्रौंच पक्षी की आवाज।
शालिवनम्	—	धान के खेत।
विपक्वम्	—	पके हुए।
शंसन्ति	—	सुशोभित कर रहे हैं (शंस्+लट् प्र.पु.ब.व.)।
वर्षव्यपनीतकालम्	—	वर्षाऋतु बीतने के बाद का समय अर्थात् शरद् ऋतु।
तटाकानि	—	तालाब।
निष्पन्नशस्याम्	—	खेती-बाड़ी का कार्य संपन्न होने पर।

अभ्यासः

1. **संस्कृतेन उत्तरं दीयताम्**

   (क) अयम् पाठः कस्मात् ग्रन्थात् संकलितः?

   (ख) कश्च तस्य रचयिता?

(ग) सुखानिलः कालः कः उच्यते?

(घ) शिखिनः कदा नृत्यन्ति?

(ङ) कस्मिन् ऋतौ जलं प्रसन्नं जायते?

(च) अम्बरस्थः चन्द्रः कथं शोभते?

(छ) तोयधराः नभः त्यक्त्वा कदा प्रयाताः?

(ज) कस्मिन् ऋतौ वायुः मृदुः संजायते?

2. रिक्तस्थानानि पूरयत

(क) नभः .... विभाति।

(ख) शिखराणि .... लताभिः उपगूढानि।

(ग) वारिधराः महत्सु महीधराणां शृङ्गेषु विश्रम्य ....।

(घ) .... वहन्ति। .... वर्षन्ति।

(ङ) हिमार्द्रबालुकाः .... भान्ति।

3. तात्पर्यम् विशदीक्रियताम्

(क) प्रियाविहीनाः ध्यायन्ति।

(ख) निश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते।

(ग) वाष्पसञ्छन्नसलिलाः सरितः भान्ति।

(घ) कुसुमैः पश्य सौमित्रे ! क्रीडन्निव समन्ततः।

4. प्रकृतिप्रत्ययविभागः क्रियताम्

गन्धवान्, सौमित्रे, पतमानैः, क्रीडन्, सन्निरुद्धम्, समुद्वहन्तः, नदन्तः, विश्रम्य,शिखिनः, कृत्वा, त्यक्त्वा, प्रयाताः, हिमवान्।

5. वसन्त-वर्षा-शरद् हेमन्तर्तूनां वर्णनं संक्षेपेण क्रियताम्

6. (क) वहन्ति वर्षन्ति ....

(ख) प्रकृत्या हिमकोशाढ्ये ....

(ग) रविसंक्रान्तसौभाग्यः ....

(घ) पतितैः पतमानैश्च -............

इत्येतेषु श्लोकेषु प्रयुक्तालंकारनिर्देशः कार्यः।

तृतीयः पाठः

पाण्डवप्रत्यभिज्ञानम्

प्रस्तुत नाट्यांश महाकवि भास-प्रणीत पञ्चरात्रम् के तृतीय अंक से संकलित किया गया है। नाटक के शीर्षकानुसार पाँच रात्रियों के अंतराल में ही पांडवों की पहचान हो जाने पर दुर्योधन ने उन्हें साम्राज्य का आंधा भाग लौटा देने की शर्त, गुरु द्रोणाचार्य के समक्ष स्वीकार कर ली थी।

सूत के मुख से कुमार अभिमन्यु का अपहरण-वृत्त सुन कर भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, कर्ण तथा शकुनि उद्भ्रांत हो उठते हैं। दुर्योधन पांडवों से वैरभाव होने के बावजूद अभिमन्यु को अर्जुन से भी पहले अपना पुत्र मानता है और उसके लिए संतप्त हो उठता है।

तभी अर्जुन का नामांकित बाण भीष्म के रथध्वज से टकराता है। 'शकुनि' नाम पढ़ कर बाण को उपेक्षाभाव से गुरु द्रोण के चरणों में फेंक देता है। द्रोणाचार्य इसे अर्जुन का प्रणाम-निवेदन मान कर गद्गद हो उठते हैं। तभी विराट का पुत्र कुमार उत्तर युधिष्ठिर का संदेश लेकर उपस्थित होता है।

दुर्योधन की शर्त पूरी हो जाती है। पाँच रातों में ही पांडवों की पहचान हो जाने के कारण वह पांडवों को आधा राज्य सौंप देता है।

(ततः प्रविशति सूतः)

सूतः : भोः भोः! निवेद्यतां सर्वक्षत्राचार्यपुरोगाणां क्षत्रियाणाम्। एष हि अभिमन्युः धनुस्सहायैः कुरुभिरपि अरक्षितः, शत्रुभिरपहृतः। (ततः प्रविशतो भीष्मद्रोणौ)

द्रोणः : सूत !कथय कथय !
रणपटुः मे शिष्यपुत्रः केन खलु अपनीतः ?

भीष्मः : कथय कथय !
यूथेऽपयाते हस्तिग्रहणोद्यतेन केन कलभो गृहीतः ?
(ततः प्रविशति दुर्योधनः, कर्णः, शकुनिः, च)

दुर्योधनः : दूत ! कथय कथय ! केनापनीतोऽभिमन्युः ?
अहमेवैनं मोक्षयामि।
मम हि पितृभिरस्य प्रस्तुतो ज्ञातिभेद-
स्तदिह मयि तु दोषो वक्तृभिः पातनीयः।
अथ च मम स पुत्रः पाण्डवानां तु पश्चात्
सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः।।

कर्णः : अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं भवता।

शकुनिः : बहुनाथः खलु सौभद्रः। मुक्त एवेति सम्प्रधार्यताम्।

द्रोणः : कथय कथय ! स्वाधीनशिक्षः सः। कथमिदानीं गृहीतः।

सूतः : आयुष्मन् ! पुरुषमयो यजुर्वेदः खलु सः। किमायुष्मता न ज्ञायते ? पदातिना तेन मे रथो गृहीतः।

सर्वे : कथं, पदातिना ?

द्रोणः : अथ कीदृशः पदातिः ?

सूतः : किमभिधास्यामि, रूपं वा पराक्रमं वा।

भीष्मः : रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते। पराक्रमेण तु पुरुषाः।

सूतः : आयुष्मन् !

दुर्योधनः : पवनजवादपि तस्मात् कथं मे त्रासः ?

सूतः : श्रोतुमर्हति महाराजः ! तेन खलु प्रसारितहयग्रीवो रथः निष्कम्प्यः कृतः।

भीष्मः : भीमेनापि पदातिनैव जयद्रथः अवजितः।

द्रोणः : सम्यगाह गाङ्गेयः। बाल्योपदेशात् प्रभृत्यहं तस्य जवमवगच्छामि।

शकुनिः : भोः पृच्छामि तावद् भवन्तम्।
कथं भवन्तः पाण्डवान् जगद्व्याप्तान् पश्यन्ति ?

भीष्मः : सर्वमनुमानात् कथ्यते।

शकुनिः : फल्गुनतुल्यपराक्रमेण एकाकिनैव उत्तरेण वयं परास्ताः।
(प्रविश्य)

सूतः : जयत्वायुष्मान्। शान्तिकर्मानुष्ठीयताम्।

भीष्मः : किमर्थम्?

सूतः : बाणप्रधर्षिते तव ध्वजे कस्य बाणस्य नाम अभिधीयते?

भीष्मः : दर्शयतु तावत्। (सूत उपनयति)

भीष्मः : (गृहीत्वा निरीक्ष्य) वत्स ! गान्धारराज !
जराशिथिलं मे चक्षुः। वाच्यतामयं शरः।

शकुनिः : (गृहीत्वा अनुवाच्य च) अर्जुनस्य (इति क्षिपति) द्रोणस्य पादयोः पतति।

द्रोणः : (शरं गृहीत्वा) एह्येहि वत्स !
एष शिष्येण मे क्षिप्तो गाङ्गेयं वन्दितुं शरः।
पादयोः पतितो भूमौ मां क्रमेणाभिवन्दितुम्।।

शकुनिः : मा तावद् भोः। शरप्रत्यय इदानीं श्रद्धातव्यम्।

दुर्योधनः : तेषां राज्यप्रदानार्थमनृतं कथ्यते यदि।
राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि यावद् दृष्टे युधिष्ठिरे।।
(प्रविश्य)

भटः : जयतु महाराजः ! विराटनगराद् दूतः प्राप्तः।

दुर्योधनः : प्रवेश्यताम्।

भटः : यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः)

(ततःप्रविशति उत्तरः)

उत्तरः : भोः भोः ! आचार्यपितामहपुरोगं सर्वराजमभिवादये।

सर्वे : आयुष्मान् भव !

द्रोणः : किमाह, तत्रभवान् विराटेश्वरः।

उत्तरः : नाहं तत्र भवता प्रेषितः।

द्रोणः : अथ केन त्वं प्रेषितः ?

उत्तरः : तत्रभवता युधिष्ठिरेण।

द्रोणः : किमाह धर्मराजः ?

उत्तरः : श्रूयताम् -

उत्तरा मे स्नुषा लब्धा प्रतीक्षे राजमण्डलम्।
तत्रैव किमिहैवास्तु, विवाहः कुत्र वर्तताम्।।

शकुनिः : तत्रैव तत्रैव।

द्रोणः : इत्यर्थं वयमानीताः पंचरात्रोऽपि वर्तते।
धर्मेणावर्जिता भिक्षा धर्मेणैव प्रदीयताम्।।

दुर्योधनः : बाढं दत्तं मया राज्यं पाण्डवेभ्यो यथापुरम्।
मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति।।

द्रोणः : हन्त ! सर्वे प्रसन्नाः स्मः।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

प्रत्यभिज्ञानम्	—	प्रति+अभि उपसर्ग, ज्ञा धातु+ल्युट् (अन), पहचान।
सूतः	—	सारथी, रथचालक।

निवेद्यताम्	—	नि उपसर्ग विद् धातु, कर्मवाच्य लोट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन।
सर्वक्षत्राचार्याः	—	सर्वे च ते क्षत्राचार्याः सर्वक्षत्राचार्याः (कर्मधारय) सर्वक्षत्राचार्याः पुरोगाः येषां तेषाम्,सभी क्षत्राचार्यों सहित।
धनुस्सहायैः	—	धनुः सहायः येषां ते तैः, धनुषसहित, धनुर्धारी।
अरक्षितः	—	न रक्षितः, नञ् तत्पुरुष, रक्षा नहीं की गई, रक्षितः - रक्ष् धातु + क्त प्रत्यय।
अपहृतः	—	अप उपसर्ग हृ धातु + क्त प्रत्यय। अपहरण कर लिया गया।
भीष्मद्रोणौ	—	भीष्मश्च द्रोणश्च, भीष्मद्रोणौ, द्वंद्व समास।
रणपटुः	—	रणे पटुः, सप्तमी तत्पुरुष, युद्ध में निपुण।
अपनीतः	—	अप उपसर्ग, नी धातु + क्त प्रत्यय, ले जाया गया, अपहरण कर लिया गया।
यूथे	—	झुण्ड, समूह, वर्ग।
अपयाते	—	अप उपसर्ग, या धातु + क्त प्रत्यय, सप्तमी, एक.व.।
हस्तिग्रहणोद्यतेन	—	हस्तिनः ग्रहणम् - हस्तिग्रहणम् (हाथी को पकड़ना) हस्तिग्रहणाय उद्यतेन, हाथी को पकड़ने के लिए तत्पर।
कलभः	—	हाथी का बच्चा।
गृहीतः	—	पकड़ लिया।
ज्ञातिभेदः	—	ज्ञातिभ्यः भेदः - बंधुओं से भिन्नता।
वक्तृभिः	—	कहने वाले, आलोचक।
पातनीयः	—	पत् + धातु + णिच् + अनीयर् , डाला जाएगा।
नापराध्यन्ति	—	न अपराध्यन्ति, अपराध नहीं करते हैं।
अतिस्निग्धम्	—	स्नेह पूर्ण।
अनुरूपम्	—	उचित।

अभिहितम्	–	अभि उपसर्ग, धा धातु + क्त प्रत्यय, धा को हि आदेश / कहा है।
बहुनाथः	–	बहवः नाथाः यस्य सः , बहुब्रीहि समास, अनेक रक्षकों वाला।
सौभद्रः	–	सुभद्रायाः अपत्यं पुमान् अथवा सुभद्रायाः अयम्, सुभद्रा का पुत्र (अभिमन्यु)।
सम्प्रधार्यताम्	–	सम् तथा प्र उपसर्ग धृ धातु + णिच् (प्रेरणार्थक) + कर्मवाच्य, लोट् लकार, प्र.पु., ए.व.।
स्वाधीनशिक्षः	–	स्वाधीना शिक्षा यस्य सः, बहुब्रीहि, जो स्वयं अपना शिक्षण निश्चित कर लेता है।
पुरुषमयः	–	पुरुष के रूप में, साक्षात्। पुरुष + मयट् प्रत्यय, पुं. प्र., एक.व.।
पदातिना	–	पैदल (चलते हुए)।
कथ्यन्ते	–	कथ धातु, कर्मवाच्य, लट्, प्र.पु., बहु.व., कही जाती हैं, वर्णन किया जाता है।
जवः	–	वेग।
त्रासः	–	भय, डर।
प्रसारितहयग्रीवः	–	हयानां ग्रीवा हयग्रीवा (ष.तत्पु.), प्रसारिता हयग्रीवा यस्मिन् सः, (तेज दौड़ने से) घोड़ों की गर्दन जहाँ आगे निकल रही है।
निष्कम्पः	–	कम्पनरहित, स्थिर, निश्चल, जड़।
अवजितः	–	जीता था।
सम्यक्	–	उचित, ठीक।
आह	–	कहता है।
गाङ्गेयः	–	भीष्म।
बाल्यम्	–	शैशव, बचपन।
जगद्व्याप्तान्	–	जगति व्याप्तान्, विश्व भर में विद्यमान।
अनुमानात्	–	अनुमान से।

फल्गुनतुल्यपराक्रमेण	—	फल्गुनेन तुल्यः पराक्रमः यस्य सः तेन, अर्जुन के समान पराक्रमी।
एकाकिना	—	अकेले।
उत्तरेण	—	राजा विराट के पुत्र, उत्तर द्वारा।
परास्ताः	—	हराए गए हैं।
प्रविश्य	—	प्र + विश् + क्त्वा, क्त्वा को ल्यप्, प्रवेश करके।
अनुष्ठीयताम्	—	कीजिए, अनु उपसर्ग, स्था धातु कर्मवाच्य, लोट्, प्र.पु. एक.व.।
बाणप्रधर्षिते	—	बाणेन प्रधर्षिते , तृतीया तत्पुरुष, बाण से ध्वस्त (दबे हुए)।
अभिधीयते	—	कहा जा रहा है।
दर्शयतु	—	दिखाइए, दृश् धातु+णिच्, लोट् लकार, प्र.पु., एकवचन।
उपनयति	—	पास ले जाता है, देता है।
गृहीत्वा	—	लेकर।
निरीक्ष्य	—	देखकर, निर्+ईक्ष् +क्त्वा, क्त्वा को ल्यप्।
जराशिथिलं	—	जरया शिथिलं, तृ. तत्पुरुष, बुढ़ापे से दुर्बल।
वाच्यताम्	—	पढ़िए।
अनुवाच्य	—	पढ़कर, अनु + वच्, धातु + णिच् + क्त्वा, क्त्वा को ल्यप्।
एह्येहि	—	एहि + एहि, आओ, आओ।
वन्दितुम्	—	प्रणाम करने के लिए।
मा तावद्	—	नहीं, नहीं।
शरप्रत्ययः	—	बाण की पहचान।
श्रद्धातव्यम्	—	श्रद्धा करनी चाहिए, विश्वास करना चाहिए।
अनृतम्	—	झूठ।
प्रवेश्यताम्	—	प्रवेश कराइए, आने दीजिए। प्र + विश् + णिच् + कर्मवाच्य, लोट् लकार, प्र.पु., एक.।

धर्मराजः	–	युधिष्ठिर।
श्रूयताम्	–	सुनिए, श्रु धातु, कर्मवाच्य, लोट्, प्र.पु., एक.।
स्नुषा	–	पुत्रवधू।
प्रतीक्षे	–	मैं प्रतीक्षा करता हूँ।
किमिहैवास्तु	–	किम् + इह + एव + अस्तु।
पञ्चरात्रः	–	पञ्चानां रात्रीणां समाहारः, पाँच रातों का समूह।
आवर्जिता	–	प्राप्त की हुई।
प्रदीयताम्	–	दी जाए। प्र + दा +कर्मवाच्य, लोट्, प्र.पु., एक.।
यथापुरम्	–	पुराणि अनतिक्रम्य, अव्ययीभाव समास, पहले के समान।
तिष्ठति	–	स्था धातु + शतृ प्रत्यय, सप्तमी, ए.व.।

पंचरात्रनाटके वर्णिताः पंच ग्रामाः -

इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम्।
प्रयच्छ चतुरो ग्रामान् कञ्चिदेकं तु पञ्चमम्।।

अभ्यासः

1. संस्कृतेन उत्तरं दीयताम्

(क) पाण्डवप्रत्यभिज्ञानम् इति पाठः कस्मात् नाटकात् संगृहीतः?
(ख) अभिमन्युः कैः अरक्षितः, शत्रुभिरपहृतः?
(ग) कुलविरोधे सति अपि के नापराध्यन्ति?
(घ) शकुनेः अनुसारं अभिमन्युः कीदृशः?
(ङ) पुरुषाः केन कथ्यन्ते स्त्रियः च केन कथ्यन्ते?
(च) अभिमन्युना कीदृशः रथः निष्कम्पः कृतः?
(छ) दुर्योधनः कदा पाण्डवेभ्यः राज्यस्यार्धं प्रदास्यति?
(ज) उत्तरः द्रोणस्य समक्षे केन प्रेषितः?

(झ) पञ्चरात्रम् नाटकम् कस्य कृतिः?

(ट) अभिमन्योः चरित्रम् वर्ण्यताम्?

2. 'अ भागे' दत्तानाम् कथनानां, 'आ' भागे दत्तैः वक्तृभिः सह योज्यताम्

'अ' भागे	'आ' भागे
(क) राजपट्टः मे शिष्यपुत्रः केन खलु अपनीतः	दुर्योधनः
(ख) अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं भवता	द्रोणः
(ग) बहुनाथः खलु सौभद्रः	कर्णः
(घ) पवनजवादपि तस्मात् कथं मे त्रासः?	शकुनिः

3. तेषां राज्य .... दृष्टे युधिष्ठिरे अस्य पद्यस्य अनुसारेण अधोलिखितानां प्रश्नानां उत्तराणि दीयन्ताम्

(क) अत्र केभ्यः राज्यप्रदानं करिष्यते?

(ख) कः राज्यस्यार्द्धं प्रदास्यति?

(ग) कस्मिन् दृष्टे राज्यम् प्रदास्यते?

(घ) अस्य श्लोकस्य वक्ता कः?

4. सप्रसङ्गं व्याख्या करणीया

(क) यूथेऽपयाते हस्तिग्रहणोद्यतेन केन कलभो गृहीतः?

(ख) बहुनाथः खलु सौभद्रः?

(ग) कथं भवन्तः पाण्डवान् जगद्व्याप्तान् पश्यन्ति?

(घ) पुरुषमयो धनुर्वेदः खलु सः?

(ङ) मा तावद् भोः ! शरप्रत्यय इदानीम् श्रद्धातव्यम्?

5. अधोलिखितानां शब्दानाम् अर्थो लेख्यः

सूतः, कलभः, अभिहितम्, पदातिः, गाङ्गेयः, पुरोगः, यथापुरम्, अनतिक्रम्य।

6. भासस्य नाट्यशैली वर्णनीया

7. पञ्चरात्रस्यानुसारं दुर्योधनस्य चरित्रचित्रणं क्रियताम्

8. पञ्चरात्रम्- नाटके केषां पञ्चानां नगराणाम् उल्लेखः कृतः?

चतुर्थः पाठः

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः

प्रस्तुत पाठ पाणिनीय अष्टाध्यायी के सूत्र *'स्थानेऽन्तरतमः'* (1.1.50)पर पतंजलि-मुनिकृत 'महाभाष्य' का एक अंश है जिसमें लौकिक एवं प्राकृतिक निदर्शनों द्वारा बताया गया है कि प्रत्येक वस्तु या व्यक्ति उसी को पसन्द करता है या उसी में समाहित होता है जो उसका सबसे अधिक आत्मीय होता है। इसीलिए कहा गया है कि वस्तुओं का कोई आंतरिक हेतु ही उन्हें मिलाता है। यही नियम भाषा में भी काम करता है। किसी भी वर्ण का स्थान वही वर्ण ग्रहण करता है जो स्थान एवं प्रयत्न की दृष्टि से उसके अत्यंत अनुरूप होता है। प्रस्तुत पाठ का शीर्षक भवभूतिकृत उत्तररामचरित से गृहीत है जिसमें आकर्षण की चर्चा है।

पातंजल महाभाष्य यद्यपि व्याकरण का ग्रंथ है तथापि उसमें अनेक वैज्ञानिक चिंतन हैं। निम्नलिखित उद्धरण में विज्ञान के आकर्षण सिद्धांत का सहज कथन है।

समाजेषु, समाशेषु, समवायेषु चास्यताम् इत्युक्ते नैव कृशाः कृशैः सहासते, न पाण्डवः पाण्डुभिः, येषामेव किंचिदर्थकृतमान्तर्यं तैरेव सहासते। तथा गावो दिवसं चरितवत्यो यो यस्याः प्रसवो भवति तेन सह शेरते तथा यान्येतानि गोयुक्तकानि संघुष्टकानि भवन्ति तान्यन्योन्यमपश्यन्ति शब्दं कुर्वन्ति।

एवं तावच्चेतनावत्सु अचेतनेष्वपि। तद्यथा लोष्ठः क्षिप्तो बहुवेगं गत्वा नैव तिर्यग् गच्छति नोर्ध्वमारोहति। पृथिवीविकारः पृथिवीमेवागच्छत्यान्तर्यतः। तथा या एता आन्तरिक्ष्यः सूक्ष्मा आपस्तासां विकारो धूमः। स धूमः आकाशे निवाते नैव तिर्यग् गच्छति नार्वागारोहति,

अव्विकारोऽप एव गच्छत्यान्तर्यतः। तथा ज्योतिषो विकारोऽर्चिराकाशदेशे निवाते सुप्रज्वलितम् नैव तिर्यग् गच्छति नार्वागारोहति। ज्योतिषो विकारो ज्योतिरेव गच्छत्यान्तर्यतः।

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

व्यतिषजति	–	(वि+अति+सज्+लट्+ प्रथम पुरुष, एकवचन) आपस में मिलने को बाध्य करता है, मिलाता है।
आन्तरः	–	(अन्तर+अण्) अन्दरूनी, अन्दर का।
आन्तरः हेतुः	–	अन्दर छिपा हुआ कारण अर्थात् सादृश्य और स्वभाव।
समाजेषु	–	(सम्+अज्+घञ्) समम् अजन्ति जनाः यत्र तेषु व्यवहरन्ति। जहाँ पर लोग किसी निश्चित व्यवस्था के अनुसार चलते हैं।
समाशेषु	–	सम्+अश्नन्ति (सम्+अश्+घञ्) समूह में, मंडली में।
कृशाः	–	(कृश् +क) दुबले-पतले।
सहासते	–	सह उपविशन्ति (सह+आस्) लट् प्रथम पुरुष बहुवचन,साथ-साथ बैठते हैं।
शेरते	–	शीङ् लट्, प्रथम पुरुष बहुवचन।
संघुष्टकानि	–	सम्+घुष्+क्त+क, एक ही जुए में जुते हुए होने के कारण घनिष्ठ रूप से परस्पर परिचित।
गोयुक्तकानि	–	बैलों के जोड़े।
आन्तर्यतः	–	अन्तर् + ष्यञ् +तसिल्, आंतरिक समीपता के कारण ।
आन्तरिक्ष्यः	–	अन्तरिक्षे भवाःआन्तरिक्ष्यः (अन्तरिक्ष+अण्+ङीप) 'आन्तरिक्षी' का बहुवचनान्तरूप। (आपः का विशेषण) आकाश में होनेवाला।

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः

तिर्यक्	–	तिरछा।
अर्वाक्	–	नीचे।
आन्तर्यम्	–	सादृश्य, स्वभाव।
निवाते	–	वायुरहित।
अर्चिः	–	ज्वाला, लपट।
आन्तर्यतः	–	सादृश्य के कारण।

अभ्यासः

1. **संस्कृतेन उत्तरत**
   - (क) अयं पाठः कस्मात् ग्रन्थात् संकलितः?
   - (ख) महाभाष्यं कस्य कृतिरस्ति?
   - (ग) धूमः कासां विकारः?
   - (घ) ज्योतिषां विकारः कः?
   - (ङ) पृथिवीविकारः लोष्ठः कां गच्छति?
   - (च) अन्योऽन्यं न दृष्ट्वा गोयुक्तकानि किं कुर्वन्ति?
   - (छ) कृशाः कैः सह न आसते?
   - (ज) गावः केन सह शेरते?
2. **अधोलिखितविशेषणानि मञ्जूषायां प्रदत्तविशेष्यैः सह योजयत**
   - (क) दिवसं चरितवत्यः ....
   - (ख) अन्योऽन्यम् अपश्यन्ति ....
   - (ग) पृथिवीविकारः ....
   - (घ) आन्तरिक्ष्यः सूक्ष्माः ....
   - (ङ) निवाते ....
   - (च) अब्विकार : ....
   - (छ) ज्योतिषः विकारः ....

   [गोयुक्तकानि, अर्चिः, धूमः, आकाशे, गावः, लोष्ठाः, आपः]

3. **क्रियापदैः सह कर्तृपदानि योजयत**

(क) .... कृशैः सह आसते।

(ख) .... वत्सैः सह शेरते।

(ग) .... शब्दं कुर्वन्ति।

(घ) .... पृथिवीम् एव गच्छति।

(ङ) .... अप एव गच्छति आन्तर्यतः।

(कृशाः, गावः गोयुक्तकानि, पृथिवीविकारः, अब्विकारो)

4. **अधोलिखिते अर्थे के शब्दाः पाठे प्रयुक्ताः?**

अर्थः शब्दः

(क) वायुरहिते

(ख) ज्वाला

(ग) स्वभावतः

(घ) जलानि

(ङ) परस्परं मेलयति

(च) सभासु

(छ) समूहेषु

(ज) शयनं कुर्वन्ति

(झ) घनिष्ठरूपेण परिचितानि

(ट) अन्तरिक्षे जाताः

(ठ) अधः

5. क. **एकवचनान्तरूपं लिखत**

यानि, एतानि, शेरते, चरितवत्यः, आसते।

ख. **सन्धिच्छेदं कुरुत -**

तान्यन्योऽन्यम्, गावो दिवसम्, आपस्तासाम्, नार्वागारोहति।

6. **आशयः स्पष्टीक्रियताम्**

क. या एता आन्तरिक्ष्यः .... अप एव गच्छत्यान्तर्यतः।

ख. समाजेषु .... तैरेव सहासते।

7. **पाठस्य शीर्षकम् अधिकृत्य तस्य सार्थकतां विशदीकुरुत**

पञ्चमः पाठः

परोपकाराय सतां विभूतयः

संस्कृत साहित्य में जातक कथाओं का अपना विशेष महत्त्व है। ये कथायें मूलतः पालि में हैं जिनकी संख्या 547 है। बोधिसत्त्व के कर्म दिव्य और अद्‌भुत हैं। उनका जीवन अलौकिक और आदर्श है। इसी से प्रेरणा लेकर आर्यशूर ने *जातकमाला* ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ गद्य-पद्य मिश्रित संस्कृत में है। प्रस्तुत पाठ इसी ग्रंथ के पंद्रहवें जातक 'मत्स्यजातकम्' का संक्षेप है।

इसमें बताया गया है कि सत्य-तपोबल के आधार पर किस प्रकार मत्स्याधिपति के रूप में बोधिसत्त्व अपने साथी मत्स्यों की प्राण रक्षा करने में समर्थ होते हैं। वस्तुतः सत्त्वगुण से परिपूर्ण आचरण देवताओं को भी वश में कर सकता है।

बोधिसत्त्वः किल कस्मिंश्चित् नातिमहति कमलकुवलयादिविभूषितसलिले हंसचक्रवाकादिशोभिते तीरान्ततरुकुसुमावकीर्णे सरसि मत्स्याधिपतिः बभूव। बहुषु जन्मान्तरेषु परोपकार-अभ्यासवशात् तत्रस्थः अपि परहितसुखसाधने व्यापृतः अभवत्। इष्टानामिव च स्वेषाम् अपत्यानाम् उपरि सौहार्दत्वाद् महासत्त्वः तेषां मीनानां दानप्रियवचनादिक्रमैः परमनुग्रहं चकार।

अथ कदाचित् सत्त्वानां भाग्यवैकल्यात् प्रमादाच्च सम्यग् देवो न ववर्ष। वृष्टेः अभावे तत् सरः कदम्बकुसुमगौरेण नवसलिलेन यथापूर्वम् न परिपूर्णम् जातम्। क्रमेण च उपगते निदाघकाले हिमकरकिरणैः अभितप्तया धरण्या, ज्वालानुगतेनेव मारुतेन पिपासावशादिव प्रत्यहम् आपीयमानं

तत् सरः लघुपल्वलमिवाभवत्। तत्रस्थिताः मीनाश्च जलाभावात् मृतप्रायाः इव संजाताः। सलिलतीरवासिनः पक्षिणः वायसगणाः च यावत् तान् मत्स्यान् भक्षयितुं चिन्तयन्ति स्म तावद् विषाददैन्यवशगं मीनकुलमवेक्ष्य बोधिसत्त्वः करुणायमानः चिन्तामापेदे। कष्टा बत इयम् आपद् आपतिता मीनानाम्।

प्रत्यहं क्षीयते तोयं स्पर्धमानमिवायुषा।
अद्यापि च चिरेणैव लक्ष्यते जलदागमः।।
अपयानक्रमो नास्ति नेताप्यन्यत्र को भवेत्।
अस्मद्व्यसनसङ्कृष्टाः समायान्ति च नो द्विषः।।

तत्किमत्र प्राप्तकालं स्यादिति विमृशन् स महात्मा स्वकीयसत्यतपोबलमेव तेषां रक्षणोपायम् अमन्यत। करुणया समापीड्यमानहृदयो दीर्घं निःश्वस्य नभः समुल्लोकयन् उवाच -

स्मरामि न प्राणिवधं यथाहं सञ्चिन्त्य कृच्छ्रे परमेऽपि कर्तुम्।
अनेन सत्येन सरांसि तोयैरापूरयन् वर्षतु देवराजः।।

अथ तस्य महात्मनः पुण्योपचयात् सत्याधिष्ठानबलात् च समन्ततः तोयपरिपूर्णाः गम्भीरमधुरनिर्घोषा अकालाः अपि कालमेघाः विद्युल्लता-ऽलंङ्कृताः प्रादुरभवन्। बोधिसत्त्वः समन्ततोऽभिप्रसृतैः सलिल-प्रवाहैरापूर्यमाणे सरसि, धारानिपातसमकालेन विद्रुते वायसाद्ये पक्षिगणे, लब्धजीविताशे च प्रमुदिते मीनगणे प्रीत्याभिसार्यमाणहृदयो वर्ष-निवृत्तिसाशङ्.कः पुनः पुनः पर्जन्यमाबभाषे -

उद्गर्ज पर्जन्य गभीरधीरं प्रमोदमुद्वासय वायसानाम्।
रत्नायमानानि पयांसि वर्षन् संसक्तविद्युज्ज्वलितद्युतीनि।।

तदुपश्रुत्य देवानाम् इन्द्रः शक्रः परमविस्मितमनाः साक्षात् अभिगम्यैनम् अभिसंराधयन् उवाच -

तवैव खल्वेष महानुभाव ! मत्स्येन्द्र ! सत्यातिशयप्रभावः।
आवर्जिता यत्कलशा इवेमे क्षरन्ति रम्यस्तनिताः पयोदाः।।

इत्येवं प्रियवचनैः संराध्य तत्रैवान्तर्दधे। तच्च सरः तोयसमृद्धिमवाप। तदेवं शीलवताम् इह एव कल्याणाः अभिप्रायाः वृद्धिम् आप्नुवन्ति प्रागेव परत्र च। अतः शीलविशुद्धौ प्रयतितव्यम्।

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

कुवलयम्	–	नीलकमलम्, नीला कमल।
चक्रवाकादिशोभिते	–	चक्रवाक (चकवा) आदि पक्षी गणों से सुशोभित।
तत्रस्थः अपि	–	वहाँ, उस जन्म में स्थित होते हुए भी।
भाग्यवैकल्यात्	–	भाग्यस्य वैकल्यम् तस्मात्, भाग्य के अनुकूल न होने पर।
आपीयमानम्	–	आ समन्तात् पा कर्मवाच्य, शानच् , चारों ओर से पीया जाता हुआ।
लघुपल्वलमिव	–	छोटे तालाब के समान।
विषाददैन्यवशगम्	–	विषादः च दैन्यं च विषाददैन्ये, तयोः वशे गतम्, विषाद और दैन्य के वशीभूत।
अवेक्ष्य	–	अव + ईक्ष् + क्त्वा> ल्यप्, देखकर।
आपेदे	–	प्राप्त हुआ।
बत	–	शोक को व्यक्त करने वाला हाय !
स्पर्धमानम्	–	स्पर्धां कुर्वाणम् (स्पर्ध् + शानच्) तोयम्, स्पर्धा करता हुआ जल।
जलदागमः	–	जलं ददाति इति जलदः तेषाम् आगमः, बादलों का आगमन।
चिरेण	–	दूर ही (देर से)
अपयानक्रमः	–	अपयानस्य क्रमः दूरगमनस्य मार्गः, बाहर जाने का रास्ता।

द्विषः	—	शत्रवः, शत्रुगण।
प्राप्तकालम्	—	प्राप्तः कालः यस्य तत्, समयोचित।
विमृशन्	—	वि मृश्, शतृ पुं, प्रथमा एकव. विचार करते हुए।
नभः	—	आकाशम्, आकाश को।
आपूरयन्	—	आ पृ-णिच्, शतृ, पु. प्रथमा, एकवचन, पूरते हुए, भरते हुए।
सत्याधिष्ठानबलात्	—	सत्य पर दृढ़ रहने की शक्ति से।
अकालाः	—	न कालः येषाम् ते, असमय प्रकट होने वाले।
कालमेघाः	—	प्रलय काल के समान मेघ।
विद्रुते	—	वि द्रु क्त सप्तमी, एकवचन, भाग जाने पर।
अभिसार्यमाणहृदयो	—	अभिसार्यमाणं प्रसाद्यमानं हृदयं यस्य सः, प्रसन्न किये जाते हुए हृदय वाला।
वर्षनिवृत्तिसाशङ्कः	—	वर्षायाः समाप्तिम् अधिकृत्य आशङ्कया सह विद्यमानः, वर्षा की समाप्ति की आशंका वाला।
पर्जन्यम्	—	मेघम्, बादल को।
संसक्तविद्युज्ज्वलित-द्युतीनि	—	संसक्तस्य विद्युतः ज्वलितेन द्युतिः येषां तानि, लगातार चमकती हुइ बिजली के प्रकाश से युक्त होने के कारण।
रत्नायमानानि पयांसि	—	रत्नों के समान दिखाई पड़ने वाले जल।
उद्वासय	—	उद् वस् णिच् लोट् मध्यम पु. , एकवचन, समाप्त कीजिए।
उपश्रुत्य	—	उप श्रु+क्त्वा>ल्यप्, सुनकर।
अभिसंराधयन्	—	अभि सम् राध् शतृ पुं. प्र. , एकवचन, स्तुति करते हुए।
सत्यातिशयप्रभावः	—	सत्यस्य अतिशयः तस्य प्रभावः। अलौकिक सत्य का प्रभाव।
आवर्जिताः कलशाः इव	—	पलटाये गये घड़ों के समान।

अन्तर्दधे	—	अन्तः धा, लिट्, प्रथम पुरुष, एकवचन, अंतर्धान हो गया।
अभिप्रायाः	—	मनोकामनाएँ।
इह	—	अस्मिन् लोके, इस लोक में।
परत्र	—	परलोके, परलोक में।

अभ्यासः

1. संस्कृतभाषया उत्तरत

(क) जातकमालायाः लेखकः कः?

(ख) बोधिसत्त्वः अस्मिन् जन्मनि कः बभूव?

(ग) बोधिसत्त्वः अस्मिन् जन्मनि अपि कस्मिन् व्यापृतः अभवत्?

(घ) महासत्त्वः मीनेषु कम् अनुग्रहम् अकरोत्?

(ङ) धरणी निदाघकाले कैः अभितप्ता जाता?

(च) सरसः जलं केन पीतं येन सरः लघु पल्वलम् इव अभवत्?

(छ) बोधिसत्त्वः किमर्थं चिन्तां प्राप्तवान्?

(ज) तोयं प्रतिदिनं केन स्पर्धमानं क्षीयते स्म?

(झ) आकाशे अकालाः अपि के प्रादुरभवन्?

(ट) कया आशङ्कया बोधिसत्त्वः पुनः पुनः पर्जन्यं प्रार्थितवान्?

2. अधोलिखितमञ्जूषायां ये शब्दाः लिखिताः सन्ति तान् ल्यबन्तेषु शतृप्रत्ययान्तेषु, शानच्-प्रत्ययान्तेषु विभज्य लिखत

आपीयमानम्, स्पर्धमानम्, अवेक्ष्य, विमृशन्, निःश्वस्य, समुल्लोकयन्, संचिन्त्य, आपूर्यमाणे, वर्षन्, उपश्रुत्य, अभिसंराधयन्, समापीड्यमानम्।

3. विशेष्यैः सह विशेषणानि योजयत

(क) अभितप्तया	सरसि
(ख) ज्वालानुगतेन	अपत्यानाम्
(ग) तत्रस्थाः	नवसलिलेन
(घ) सलिलतीरवासिनः	धरण्या

(ङ) इष्टानाम् मारुतेन

(च) कदम्बकुसुमगौरेण मीनः

(छ) करुणायमानः पक्षिणः

(ज) हंसचक्रवाकादिशोभिते बोधिसत्त्वः

4. सरः पूर्वं कीदृशम् आसीत्, निदाघकाले च कीदृशं जातम्?

5. भिन्नप्रकृतिकं चिनुत

(क) उद्गर्ज, पर्जन्य, उद्भासय, वर्षतु।

(ख) महानुभाव, बोधिसत्त्वः, सरः, पक्षिणः।

(ग) परिपूर्णम्, आपतिता, सङ्कृष्टाः, समन्ततः।

(घ) प्रादुरभवन्, अभिसंराधयन्, आपूरयन्, समुल्लोकयन्।

(ङ) कदाचित्, प्रत्यहम्, यावत्, आपद्।

6. उपमेयैः सह उपमानानि योजयत

(क) .... इव मीनानां परमनुग्रहं चकार।

(ख) .... तोयं प्रत्यहं क्षीयते।

(ग) .... इमे पयोदाः क्षरन्ति।

(घ) ....नवसलिलेन सरः परिपूर्णं न जातम्।

(ङ) सरः ग्रीष्मकाले ....इव संजातम्।

7. आशयं स्पष्टीकुरुत

(क) बहुषु जन्मान्तरेषु परोपकार-अभ्यासवशात् तत्रस्थः अपि परहितसुखसाधने व्यापृतः अभवत्।

(ख) कष्टा बत इयम् आपदापतिता मीनानाम्।

(ग) अस्मद्व्यसनसङ्कृष्टाः समायान्ति नो द्विषः।

(घ) शीलवताम् इह एव कल्याणाः अभिप्रायाः वृद्धिम् आप्नुवन्ति।

8. बोधिसत्त्वः मत्स्यराजभूमिकायां मीनानां रक्षणार्थं किं कृतवान् इति पञ्चवाक्येषु लिखत

षष्ठः पाठः

सौवर्णशकटिका

महाकवि शूद्रक-प्रणीत मृच्छकटिक प्रकरण स्वयुगीन समाज का दर्पण माना जाता है। धनहीन ब्राह्मण सार्थवाह, आर्य चारुदत्त तथा उज्जयिनी नगर की गणिका वसंतसेना की प्रणयकथा पर आधारित यह नाट्यकृति उस युग की अराजकता, समाज में व्याप्त कुरीति, द्यूतव्यसन, चौर्यवृत्ति, न्यायालय में व्याप्त पक्षपात तथा राजा के सगे-संबंधियों के स्वैराचार का प्रामाणिक वृत्त प्रस्तुत करती है।

प्रस्तुत नाट्यांश मृच्छकटिक के छठे अंक से लिया गया है। इसमें शिशु मन को उद्वेलित करने वाले बालसुलभ लोभ को मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है। धनीमानी पड़ोसी बच्चे की सोने की गाड़ी देख, धनहीन चारुदत्त का बेटा रोहसेन अशांत हो उठता है। दासी रदनिका उसे फुसलाने का प्रयत्न करती है - मिट्टी की गाड़ी देकर। परंतु भोला शिशु अपनी जिद पर अड़ा रहता है। रदनिका उसे वसंतसेना के पास ले जाती है। बच्चे का परिचय तथा उसके रोने का कारण जानकर वात्सल्यमयी वसंतसेना अपने सारे आभूषण बच्चे को सौंप देती है और कहती है- इनसे तुम भी सोने की गाड़ी बनवा लेना।

इस प्रकार, प्रस्तुत नाट्यांश शिशुओं के निर्मल अंतःकरण तथा स्नेहशीला नारी की वत्सलता को प्रकाशित करता है।

(ततः प्रविशति दारकं गृहीत्वा रदनिका)

रदनिका : एहि वत्स ! शकटिकया क्रीडावः।

दारकः : (सकरुणम्)
रदनिके! किम्मम एतया मृत्तिकाशकटिकया? तामेव सौवर्णशकटिकां देहि।

रदनिका : (सनिर्वेदं निःश्वस्य)
जात ! कुतोऽस्माकं सुवर्णव्यवहारः? तातस्य पुनरपि ऋद्ध्या सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि। तद्यावद् विनोदयाम्येनम्। आर्याया वसन्तसेनायाः समीपमुपसर्पिष्यामि। (उपसृत्य) आर्ये! प्रणमामि।

वसन्तसेना : रदनिके ! स्वागतं ते। कस्य पुनरयं दारकः? अनलङ्कृतशरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति मम हृदयम्।

रदनिका : एष खलु आर्यचारुदत्तस्य पुत्रो रोहसेनो नाम।

वसन्तसेना : (बाहू प्रसार्य)
एहि मे पुत्रक ! आलिङ्ग।
(इत्यङ्के उपवेश्य)
अनुकृतमनेन पितुः रूपम्।

रदनिका : न केवलं रूपं, शीलमपि तर्कयामि। एतेन आर्यचारुदत्त आत्मानं विनोदयति।

वसन्तसेना : अथ किन्निमित्तमेष रोदिति?

रदनिका : एतेन प्रातिवेशिकगृहपतिदारकस्य सुवर्णशकटिकया क्रीडितम्। तेन च सा नीता। ततः पुनस्तां मार्गयतो मयेयं मृत्तिकाशकटिका कृत्वा दत्ता। ततो भणति रदनिके ! किम्मम एतया मृत्तिकाशकटिकया? तामेव सौवर्णशकटिकां देहि 'इति'।

वसन्तसेना : हा धिक् हा धिक् !अयमपि नाम परसम्पत्त्या सन्तप्यते? भगवन् कृतान्त ! पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुसदृशैः क्रीडसि त्वं पुरुषभागधेयैः। (इति सास्रा) जात ! मा रुदिहि !सौवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि।

दारकः : रदनिके ! का एषा?

रदनिका : जात ! आर्या ते जननी भवति।

दारकः : रदनिके ! अलीकं त्वं भणसि। यद्यस्माकमार्या जननी तत् केन अलङ्कृता?

वसन्तसेना : जात ! मुग्धेन मुखेन अतिकरुणं मन्त्रयसि। (नाट्येन आभरणान्यवतार्य रुदती) एषा इदानीं ते जननी संवृत्ता। तद् गृहाणैतमलङ्कारकम्, सौवर्णशकटिकां घटय।

दारकः : अपेहि, न ग्रहीष्यामि। रोदिषि त्वम्।

वसन्तसेना : (अश्रूणि प्रमृज्य) जात ! न रोदिष्यामि। गच्छ, क्रीड। (अलङ्कारैर्मृच्छकटिकां पूरयित्वा) जात ! कारय सौवर्णशकटिकाम्। (इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका)

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

दारकम्	—	बालकम्, पुत्रकम्, बच्चे को।
शकटिकया	—	गाड़ी के द्वारा।
मृत्तिकाशकटिकया	—	मृत्तिकानिर्मितया गन्त्र्या, मिट्टी की गाड़ी से।
सौवर्णशकटिकाम्	—	सुवर्णनिर्मितां गन्त्रीं, सोने की गाड़ी को।

सुवर्णव्यवहारः	—	स्वर्णस्य आदानं प्रदानम्, सोने का लेन-देन।
विनोदयामि	—	अनुरञ्जयामि, बहलाती हूँ।
उपसर्पिष्यामि	—	पार्श्वमुपगमिष्यामि, पास पहुँचती हूँ।
किन्निमित्तम्	—	किमर्थम्, किस लिये, किस बात के लिये।
प्रातिवेशिकः	—	प्रतिवेशे निकटे स्थितः, पड़ोस में रहने वाला।
मार्गयतः	—	अन्विष्यतः, खोजने वाले का।
परसम्पत्त्या	—	अन्यस्य समृद्ध्या, पराई समृद्धि से।
सन्तप्यते	—	दुःखमनुभवति, सन्तप्त हो रहा है।
पुष्करपत्रम्	—	कमलपत्रम्, कमल का पत्ता।
पुरुषभागधेयैः	—	मनुष्यस्य भाग्यैः, मनुष्य के भाग्य के साथ।
अलीकम्	—	असत्यम्, झूठ।
अलङ्कृता	—	विभूषिता, आभूषण पहने हुई।
मुग्धेन मुखेन	—	कोमलेन (निर्दोषेण) मुखेन, भोले मुख से।
आभरणानि	—	आभूषणानि, गहनों को।
घटय	—	निर्मापय, बनवा लो।
अपेहि	—	दूरीभव, दूर हटो।
प्रमृज्य	—	सारयित्वा, पोंछ कर।
निष्क्रान्ता	—	बहिर्गता, बाहर निकल गई।

अभ्यासः

1. निर्दिष्टप्रकृतिप्रत्ययनिर्मितं पदं लिखत

ग्रह् + क्त्वा	=	गृहीत्वा
निः+श्वस् + ल्यप्	=	....
उप + सृ + ल्यप्	=	....
अनु + कृ + क्त	=	....
क्रीड् + क्त	=	....
अलम् + कृ + क्त + टाप्	=	....

अव + तृ + णिच् + ल्यप् =................

प्र + मृज् + ल्यप् = ...

पूर् + क्त्वा = ...

आङ् +दा + ल्यप् = ...

2. निर्दिष्टप्रश्नानामुत्तरं लिखत

(क) दारकः (रोहसेनः) रदनिकां किमयाचत?

(ख) रदनिका किमुक्त्वा दारकं तोषितवती?

(ग) रोहसेनः कस्य पुत्र आसीत्?

(घ) रोहसेनेन स्वपितुः किम् अनुकृतम्?

(ङ) वसन्तसेना किमुक्त्वा दारकं सान्त्वयामास?

3. रिक्तस्थानं कोष्ठाङ्कितेन समुचितशब्देन पूरयत

(क) ततः प्रविशति दारकं .... रदनिका। (मत्वा/ हृत्वा/ गृहीत्वा)

(ख) आर्यायाः वसन्तसेनायाः .... उपसर्पिष्यामि (समीपं/गृहं/दूरम्)

(ग) एतेन आर्यचारुदत्तः .... विनोदयति (लोकं/गृहं/ आत्मानम्)

(घ) जात ! आर्या ते .... भवति। (दासी / शिक्षिका/जननी)

(ङ) जात ! मुग्धेन ....अतिकरुणं मन्त्रयसि (वाक्येन/स्वरेण/ मुखेन)

4. अधोलिखितक्रियापदानां लकारवचनपुरुषनिर्देशं कुरुत

क्रीडावः, देहि, क्रीडिष्यसि, उपसर्पिष्यामि, प्रणमामि, आनन्दयति, कारय।

सप्तमः पाठः

स्वभावो हि दुरतिक्रमः

पंचतंत्र तथा हितोपदेश नीतिकथा के आकर ग्रंथ हैं। परम्परानुसार विष्णुशर्मा ने मूर्ख राजकुमारों को शिक्षित बनाने के उद्देश्य से पाँच तंत्रों (मित्रसम्प्राप्ति, मित्रभेद आदि) से युक्त पंचतंत्र का निर्माण किया। यही कथाग्रंथ अरबी में 'कलेला-दमेना' (करटक दमनक) नाम से तथा अरबी - स्रोतों से यूरोपीय भाषाओं में अनूदित होकर लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचा। कालांतर में नारायण पंडित ने पंचतंत्र की ही शैली में हितोपदेश की रचना की।

प्रस्तुत कहानी हितोपदेश से संकलित की गई है जिसमें यह संदेश दिया गया है कि मनुष्य को अपना पक्ष कभी नहीं छोड़ना चाहिए। पराया धर्म, पराया पक्ष अंततः दुखद ही सिद्ध होता है। यह संदेश उस शृगाल के माध्यम से प्रस्तुत है जो किसी रंगसाज की नाँद में गिरकर नीलेरंग का बन गया और अपने इसी विचित्र रूप-रंग के कारण जंगल का राजा बन बैठा। वह स्वजातीय शृगालों को उपेक्षित कर अन्य वन्यजीवों में प्रतिष्ठित बनने लगा। परंतु एक दिन शृगालों की बोली सुनकर वह आत्मनियंत्रण नहीं कर पाया, स्वयं भी ' हुआँ हुआँ' करने लगा। बस फिर क्या था? उसकी पोलपट्टी खुल गई और वह मार डाला गया।

अस्त्यरण्ये कश्चित् शृगालः स्वेच्छया नगरोपान्ते भ्राम्यन्नीलीभाण्डे पतितः। पश्चात्तत उत्थातुमसमर्थः प्रातरात्मानं मृतवत्संदर्श्य स्थितः। अथ नीलीभाण्डस्वामिना मृत इति ज्ञात्वा तस्मात्समुत्थाप्य दूरे नीत्वा अपसारितस्तस्मात्पलायितः, ततोऽसौ वनं गत्वा स्वकीयमात्मानं नीलवर्णमवलोक्याचिन्तयत् - 'अहमिदानीमुत्तमवर्णः ! तदहं स्वकीयोत्कर्षं

किं न साधयामि' इत्यालोच्य शृगालानाहूय तेनोक्तम् - अहं भगवत्या वनदेवतया स्वहस्तेनारण्यराज्ये सर्वौषधिरसेनाभिषिक्तः। तदद्यारभ्यारण्येऽस्मदाज्ञया व्यवहारः कार्यः।

शृगालाश्च तं विशिष्टवर्णमवलोक्य साष्टाङ्गपातं प्रणम्योचुः - यथाज्ञापयति देवः। इत्यनेनैव क्रमेण सर्वेष्वरण्यवासिष्वाधिपत्यं तस्य बभूव। ततस्तेन स्वज्ञातिभिरावृतेनाधिक्यं साधितम्।

ततस्तेन व्याघ्रसिंहादीनुत्तमपरिजनान्प्राप्य सदसि शृगालानवलोक्य लज्जमानेनावज्ञया स्वज्ञातयः सर्वे दूरीकृताः। ततो विषण्णान् शृगालानवलोक्य केनचिद् वृद्धशृगालेनैतत्प्रतिज्ञातम् - 'मा विषीदत'।

यदनेनानभिज्ञेन नीतिविदो मर्मज्ञा वयं स्वसमीपात्परिभूतास्तद्यथायं नश्यति तथा विधेयम्। यतोऽमी व्याघ्रादयो वर्णमात्रविप्रलब्धाः शृगालमज्ञात्वा राजानमिमं मन्यन्ते। तद्यथायं परिचितो भवति तथा कुरुत। तत्र चैवमनुष्ठेयम्। यतः सर्वे संध्यासमये संनिधाने महारावमेकदैव करिष्यथ।

ततस्तं शब्दमाकर्ण्य जातिस्वभावात्तेनापि शब्दः कर्त्तव्यः। ततस्तथानुष्ठिते सति तद्वृत्तम्। यतः -

यः स्वभावो हि यस्यास्ति स नित्यं दुरतिक्रमः।
श्वा यदि क्रियते राजा तत्किं नाश्नात्युपानहम्।।

ततः शब्दादभिज्ञाय स व्याघ्रेण हतः। तथा चोक्तम् -

छिद्रं मर्म च वीर्यं च सर्वं वेत्ति निजो रिपुः।
दहत्यन्तर्गतश्चैव शुष्कं वृक्षमिवानलः।।

अत एवोक्तम् -

आत्मपक्षं परित्यज्य परपक्षेषु यो रतः।
स परैर्हन्यते मूढो नीलवर्णशृगालवत्।।

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

नगरोपान्ते	—	नगरस्य उपान्ते (निकटे) (ष. तत्पुरुष) , नगर के पास।
भ्राम्यन्	—	भ्रम् धातु, शतृ प्रत्यय पुं., प्र., ए.व.।
उत्थातुम्	—	उठने में (निकलने में) उद् +स्था + तुमुन् प्रत्यय।
मृतवत्	—	मरे हुए के समान।
सन्दर्श्य	—	दिखाकर, सम् + दृश् + णिच् +क्त्वा>ल्यप्।
समुत्थाप्य	—	उठाकर, निकालकर, सम् +उद्+स्था +णिच् + क्त्वा>ल्यप्।
अपसारितः	—	अप +सृ + णिच् +क्त प्रत्यय पुं., प्र., एकव., फेंक दिया, हटा दिया।
पलायितः	—	भाग गया, परा + अय् धातु + क्त ।
अवलोक्य	—	देखकर, अव + लोक् + क्त्वा > ल्यप्।
उत्तमवर्णः	—	श्रेष्ठ रंग वाला, उत्तमः वर्णः, यस्य सः, बहुव्रीहिः।
आलोच्य	—	आ +लुच् +क्त्वा > ल्यप्, सोचकर।
आहूय	—	आ +ह्वे + क्त्वा >ल्यप्, बुलाकर।
अभिषिक्तः	—	बनाया, सिंहासन पर बैठाया, अभिषेक किया, अभि + सिच् + क्त, पु. प्र. ए.व.।
तदद्यारभ्यारण्येऽस्मिन्	—	तत् +अद्य+आरभ्य+अरण्ये +अस्मिन्। आरभ्य - लेकर।
साष्टाङ्गपातम्	—	अष्टानाम् अङ्गानां पातः - आठों अंगों का नमन, अष्टाङ्गपातेन सह साष्टाङ्गपातम् आठों अंगों से दण्डवत् , प्रणाम करके।
आधिपत्यम्	—	राज्य, अधिपतेः भावः, अधिपति +ष्यञ् प्रत्यय।
ज्ञातिभिः	—	रिश्तेदारों से।
आवृतेन	—	घिरे हुए।

आधिक्यम्	—	अधिकता, अधिक + ष्यञ् प्रत्यय।
व्याघ्रसिंहादीन्	—	व्याघ्रः सिंहः च आदिः येषां तान्, व्याघ्र, सिंह आदि को।
प्राप्य	—	पाकर।
लज्जमाने	—	लज्जित होते हुए, लज्ज + शानच् प्रत्यय, सप्तमी ए.व.।
दूरीकृताः	—	दूर कर दिया, अदूराः दूराःकृताः, दूरीकृताः। दूर+च्वि+कृ+क्त, पु.प्र.ब.व.।
विषीदत	—	दुखी होओ, वि +सद्+लोट्, मध्यम पुरुष, बहुवचन।
अनभिज्ञेन	—	न अभिज्ञेन, नञ्तत्पुरुष, अज्ञानी ने।
नीतिविदः	—	नीतिं विदन्ति ते, नीति के जानने वाले।
परिभूताः	—	अपमानित किया है।
विप्रलब्धाः	—	ठगे हुए, वि+प्र+लभ्+क्त, पुं. प्र. बहुवचन।
अनुष्ठेयम्	—	कीजिए, अनु+स्था+यत्, नपुं, प्रथमा, एकवचन।
संनिधाने	—	पास में।
महारावम्	—	बहुत अधिक शब्द (शोर)।
आकर्ण्य	—	सुनकर।
अनुष्ठिते	—	करने पर।
वृत्तम्	—	हुआ।
नाश्नाति	—	न +अश्नाति, नहीं खाता है , चाहता है।
उपानहम्	—	जूते को।
अभिज्ञाय	—	पहचानकर।
दहत्यन्तर्गतश्चैव	—	दहति+अन्तर्गतः +च +एव , अंदर ही अंदर जला डालता है।
अनलः	—	अग्नि, आग।
परित्यज्य	—	छोड़कर, परि+त्यज्+क्त्वा को ल्यप्।
हन्यते	—	मारा जाता है।

अभ्यासः

1. **अधोलिखितानां प्रश्नानां संस्कृतेन उत्तरं दीयताम्**
   (क) अयम् पाठः कस्मात् ग्रन्थात् संगृहीतः?
   (ख) हितोपदेशः कस्य कृतिः?
   (ग) श्रृगालः कुत्र पतितः?
   (घ) श्रृगालेन स्वज्ञातिभ्यः किमुक्तम्?
   (ङ) वृद्धश्रृगालेन किं प्रतिज्ञातम्?
   (च) कः परैः हन्यते?
2. **अनेन पाठेन का शिक्षा लभ्यते?**
3. **प्रस्तुतपाठानुसारं हितोपदेशस्य भाषाशैली वर्णनीया**
4. **अधोलिखितानां वाक्यांशानां व्याख्या कर्त्तव्या**
   (क) अहम् इदानीम् उत्तमवर्णः।
   (ख) स्वभावो दुरतिक्रमः।
   (ग) आत्मपक्षं परित्यज्य परपक्षेषु यो रतः।
   (घ) श्वा यदि क्रियते राजा तत्किं नाश्नात्युपानहम्।
5. **अधोलिखितानां गद्यांशानां अनुवादः कर्त्तव्यः**
   (क) श्रृगालाश्च तं............. आधिक्यं साधितम्।
   (ख) ततस्तं शब्दमाकर्ण्य.............. नाश्नात्युपानहम्।
6. **अधोलिखितानां शब्दानां सन्धिच्छेदः करणीयः**
   प्रातरात्मानं, इत्यालोच्य, ततस्तेन, तद्यथायं, शब्दादभिज्ञाय, दहत्यन्तर्गतश्चैव, ततोऽसौ।
7. **यः स्वभावो हि यस्यास्ति ....।**
   इत्यस्मिन् श्लोके प्रयुक्तालङ्कारनिर्देशं कुरुत।

अष्टमः पाठः

आहारगुणाः

प्रस्तुत पाठ चरकसंहिता के 'विमानस्थानम्' प्रकरण के 'रसविमान' नामक प्रथम अध्याय से संकलित है। यहाँ प्रयुक्त विमान शब्द का तात्पर्य रोगात्मक दोषों एवं औषधियों के विज्ञान से है। इसमें बताया गया है कि स्वास्थ्य का मूल आधार समुचित आहार है। भोजन के प्रकार, उसकी मात्रा तथा उचित समय आदि का विधान ही इस अंश का वर्ण्य विषय है।

उष्णमश्नीयात्, उष्णं हि भुज्यमानं स्वदते, भुक्तं चाग्निमौदर्यमुदीरयति, क्षिप्रं जरां गच्छति, वातमनुलोमयति। श्लेष्माणं च परिह्रासयति, तस्मादुष्णमश्नीयात्।

स्निग्धमश्नीयात्, स्निग्धं हि भुज्यमानं स्वदते, क्षिप्रं जरां गच्छति, वातमनुलोमयति, शरीरमुपचिनोति, दृढीकरोतीन्द्रियाणि, बलाभिवृद्धिमुपजनयति, वर्णप्रसादं चाभिनिर्वर्तयति; तस्मात् स्निग्धमश्नीयात्। मात्रावदश्नीयात्। मात्रावद्धि भुक्तं वातपित्तकफानपीडयदायुरेव विवर्धयति केवलम् सुखे विपच्यते, न चोष्माणमुपहन्ति, अव्यथं च परिपाकमेति, तस्मान्मात्रावदश्नीयात्।

जीर्णेऽश्नीयात्; अजीर्णे हि भुञ्जानस्याभ्यवहृतमाहारजातं पूर्वस्याहारस्य रसमपरिणतमुत्तरेणाहार-रसेनोपसृजत् सर्वान् दोषान् प्रकोपयत्याशु, जीर्णे तु भुञ्जानस्य स्वस्थानस्थेषु दोषेष्वग्नौ चोदीर्णे जातायां च बुभुक्षायां विवृतेषु च स्रोतसां मुखेषु विशुद्धे चोद्गारे हृदये

विशुद्धे वातानुलोम्ये विसृष्टेषु च वातमूत्रपुरीषवेगेषु अभ्यवहृतमाहारजातं सर्वशरीरधातूनप्रदूषयदायुरेवाभिवर्धयति केवलम्, तस्माज्जीर्णेऽश्नीयात्। वीर्याविरुद्धमश्नीयात्; अविरुद्धवीर्यमश्नन् हि विरुद्धवीर्याहार-जैर्विकारैर्नोपसृज्यते। तस्माद् वीर्याविरुद्धमश्नीयात्।

इष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणं चाश्नीयात्। इष्टे हि देशे इष्टैः सर्वोपकरणैः सह भुञ्जानो नानिष्टदेशजैर्मनोविघातकरैर्भावैर्मनोविघातं प्राप्नोति। तस्मादिष्टे देशे तथेष्टसर्वोपकरणं चाश्नीयात्।

नातिद्रुतमश्नीयात्; अतिद्रुतं हि भुञ्जानस्योत्स्नेहनमवसादनं भोजनस्याप्रतिष्ठानं च भोज्यदोषसाद्गुण्योपलब्धिश्च न नियता, तस्मान्नातिद्रुतमश्नीयात्।

नातिविलम्बितमश्नीयात्; अतिविलम्बितं हि भुञ्जानो न तृप्तिमधिगच्छति, बहु भुङ्.क्ते शीतीभवत्याहारजातं विषमं च पच्यते, तस्मान्नातिविलम्बितमश्नीयात्।

अजल्पन्नहसन् तन्मना भुञ्जीत, जल्पतो हसतोऽन्यमनसो वा भुञ्जानस्य त एव दोषा भवन्ति य एवातिद्रुतमश्नतः, तस्मादजल्पन्नहसंस्तन्मना भुञ्जीत।

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

आहारः	—	आ + हृ + घञ् = भोजन।
औदर्यम्	—	उदर + यत्, उदर्य + अण्, उदरे भवः - पेट की 'अग्निम्' का विशेषण।
वर्णप्रसादंचाभिनिर्वर्तयति	—	रंग रूप में, सौंदर्य में निखार लाता है।
क्षिप्रं जरां गच्छति	—	जल्दी पच जाता है।
स्निग्धम्	—	स्निह् + क्त , चिकनाई, घृत तैलादि से युक्त।

मात्रावत्	–	मात्रा+ मतुप् , उचित मात्रा में ।
उपचिनोति	–	उप् +चि+लट्+प्र.पु., एकवचन, बढ़ाता है।
अव्यथम्	–	व्यथया रहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययीभाव, क्रियाविशेषण, बिना कष्ट के सरलता से।
परिपाकम्	–	परि+पच्+घञ्, हाजमे को।
अजीर्णे	–	जॄ+क्त, न जीर्णे इति नञ् तत्पुरुष न पचने पर।
अभ्यवहृतम्	–	अभि +अव + हृ +क्त = खोया हुआ।
उपसृजत्	–	उप् + सृज् +शतृ =मिलता हुआ।
बुभुक्षा	–	भोक्तुं इच्छा, भुज्+सन्+अ+टाप्, भोजन की इच्छा।
विवृतम्	–	वि + वृ + क्त खुला हुआ।
प्रकोपयत्याशु	–	शीघ्रता से बढ़ाता है।
विसृष्टेषु	–	वि+सृज्+क्त, सप्तमी बहुवचन, त्यागने पर, विसर्जन के उपरान्त।
उपसृज्यते	–	उप+सृज् +कर्मवाच्य, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, ग्रस्त होता है।
इष्टसर्वोपकरणम्	–	इच्छित समस्त द्रव्य जैसे - चटनी, अचार आदि।
वातानुलोम्ये	–	वायु के अनुकूल होने पर।
इष्टम्	–	इष् +क्त, इच्छित।
अवसादनम्	–	अव +सद्+णिच्+ल्युट्, कष्टकारक।
उत्स्नेहम्	–	उल्टे मार्ग की ओर जाना, डकार आना , उल्टी होना।
अप्रतिष्ठानम्	–	न प्रतिष्ठानम्, नञ् तत्पुरुष, उचित स्थान पर न पहुँचना।
अजल्पत्	–	न जल्पत्, नञ् तत्पुरुष, बिना बोलते हुए।
मनोविघातम्	–	मनसः विघातम्, वि+हन्+घञ् +द्वितीया +एकवचन, तत्पुरुष, मानसिक कष्ट को।

अभ्यासः

1. **संस्कृतेन उत्तरत**

(क) एषः पाठः कस्मात् ग्रन्थात् उद्धृतः?
(ख) चरकसंहितायाः रचयिता कः?
(ग) कीदृशं भोजनम् इन्द्रियाणि दृढीकरोति?
(घ) अजीर्णे भुञ्जानस्य कः दोषः भवति?
(ङ) कीदृशं भोजनम् श्लेष्माणं परिह्रासयति?
(च) कीदृशं भोजनम् बलाभिवृद्धिम् उपजनयति?
(छ) इष्टसर्वोपकरणं भोजनं कुत्र अश्नीयात्?
(ज) कथं भुञ्जानस्य उत्स्नेहस्य समाप्तिः न नियता?
(झ) अतिविलम्बितं हि भुञ्जानो काम् न अधिगच्छति?
(ट) जल्पतः हसतः अन्यमनसः वा भुञ्जानस्य के दोषा भवन्ति?

2. **उचितक्रियापदैः रिक्तस्थानानि पूरयत**

(क) बहु भुङ्क्ते आहारजातं ....
(ख) अजल्पन् अहसन् ....
(ग) उष्णं हि भुज्यमानं ....
(घ) उष्णं भोजनं उदरस्य अग्निम् ....
(ङ) स्निग्धं भुज्यमानं भोजनम् शरीरम् ....
(च) मात्रावद् हि भुक्तं सुखं ....
(छ) अतिद्रुतं हि न ....
(ज) उष्णं भोजनं वातम् ....

3. **अधोलिखित-अर्थेषु युक्तान् शब्दान् लिखत**

यथा उदरे स्थितम् — औदर्यम्

शीघ्रम् ....
वृद्धावस्थाम् ....
तैलादियुक्तम् ....
भोक्तुम् इच्छा ....

वमनम् ....

भाषयन् ....

मानसिककष्टम् ....

भुञ्जीयात् ....

4. **अधोलिखितप्रकृतिप्रत्ययविभागं योजयत**

यथा जृ + क्त नपुं, प्र. एकवचनम्	=	जीर्णम्
अश् शतृ पुं प्रथमा एकवचनम्	=	....
अभि वृध् णिच् लट् प्र.पु., एकवचनम्	=	....
उप + सृज् कर्मवाच्य, लट्, प्र.पु.एकवचन	=	....
इष् + क्त् पुं. सप्तमी एकवचनम्	=	....
भुज् शानच्, पुं षष्ठी, एकवचनम्	=	....
न हसन् इति	=	....
प्र + कुप् +णिच् लट्, प्र.पु.एकवचनम्	=	....
जन् + क्त स्त्रीलिङ्.गम् सप्तमी एकवचनम्	=	....
उप + चि + लट्, प्र.पु. एकवचनम्	=	....
अभि + नि + वृत् + णिच्, लट्लकार, प्र.पु. एकवचनम्	=	....

5. **आहारस्य गुणान् अधिकृत्य एकैकं वाक्यं स्वशब्देषु लिखत**

यथा उष्णम् अश्नीयात्

उष्णम् भोजनम् उदरस्य अग्निं वर्धयति

स्निग्धम् अश्नीयात्

....

जीर्णे अश्नीयात्

....

अतिद्रुतम् न अश्नीयात्

....

अतिविलम्बितं न अश्नीयात्

....

तन्मनाः भुंजीत

....

6. **णिजन्तक्रियापदानि लिखत**

यथा प्रकुप्यति	–	प्रकोपयति
वर्धते	–	....
उदीरते	–	....
उपजायते	–	....
अभिनिवर्तते	–	....
प्रदुष्यति	–	....

7. **पाठात् चित्वा विलोमशब्दान् लिखत**

यथा- विरुद्धम्	अविरुद्धम्
अतिविलम्बितम्	....
जल्पन्	....
हसन्	....
जीर्णे	....
इष्टम्	....
तन्मनः	....
अतिद्रुतम्	....

नवमः पाठः

प्रबन्धकौशलम्

प्रस्तुत पाठ दण्डी-रचित *दशकुमारचरितम्* नामक गद्यकाव्य के षष्ठ उच्छ्वास से संकलित किया गया है। मूल रचना में गोमिनीवृत्तांत के रूप में उपनिबद्ध इस कथा में एक सुंदर तथा सद्गुणों से अलंकृत नारी में जो विशिष्ट लक्षण होने चाहिए उनसे युक्त एक नारी का चित्र प्रस्तुत कर यह प्रदर्शित किया गया है कि शारीरिक शुभ लक्षणों से युक्त नारी में बौद्धिक एवं आंतरिक सद्गुणों की संभावना सुनिश्चित सी होती है तथा ऐसी गृहिणी पति तथा उसके परिवार की भली प्रकार देखरेख कर सकती है। अतः विवाह में कन्या के सद्गुणों को विशेष महत्त्व देना चाहिए।

अस्ति द्रविडेषु काञ्ची नाम नगरी। तस्यामनेककोटिसारः श्रेष्ठिपुत्रः शक्तिकुमारो नामासीत्। यौवनारूढः स चिन्तामापेदेनास्त्यदाराणामननुगुणदाराणां वा सुखं नाम। तत्कथं नु गुणवद्विन्देयं कलत्रम् इति। अथ परप्रत्ययाहृतेषु दारेषु यादृच्छिकीं संपत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम भूत्वा वस्त्रान्तपिनद्धशालिप्रस्थो भुवं बभ्राम। 'लक्षणज्ञोऽयम्' इत्यमुष्मै कन्याः कन्यावन्तः प्रदर्शयाम्बभूवुः। यां काञ्चिल्लक्षणवतीं सवर्णां कन्यां दृष्ट्वा स किल स्म ब्रवीति - 'भद्रे ! शक्नोषि किमनेन शालिप्रस्थेन गुणवदन्नमस्मानभ्यवहारयितुम्' इति। स हसितावधूतो गृहाद्गृहं प्रविश्याभ्रमत्। एकदा तु शिविषु कावेरीतीरपत्तने सह पितृभ्यामवसितमहर्धिं धात्र्या प्रदर्श्यमानां काञ्चन विरलभूषणां कुमारीं ददर्श। अस्यां संसक्तचक्षुश्चातर्कयत् -

'अस्याः खलु कन्यकायाः सर्व एवावयवा नातिस्थूला नातिकृशा नातिह्रस्वा नातिदीर्घा न विकटा मृजावन्तश्च। रक्ततलाङ्गुली करौ, मांसलौ चाङ्घ्री, वलित्रयेण चालङ्कृतमुदरम्, सन्नतांसदेशे सौकुमार्यवत्यौ बाहुलते, तन्वी कम्बुवृत्तबन्धुरा च कन्धरा, वृत्तमध्यविभक्तरागाधरम्, असंक्षिप्तचारुचिबुकम्, मधुराधीरसंचारमन्थरायतेक्षणम्, इन्दुशकलसुन्दरललाटम्, इन्द्रनीलशिलाकाररम्यालक-पङ्क्तिः, अनतिभङ्गुरो बहुलः निसर्गसमस्निग्धनीलो गन्धग्राही च मूर्धजकलापः।

सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम्। आसज्जति मे हृदयमस्यामेव। तत्परीक्ष्यैनामुद्वहेयम्। अविमृश्यकारिणां हि नियतमनेकाः पतन्त्यनुशयपरम्पराः इति स्निग्धदृष्टिराचष्ट- 'भद्रे, कच्चिदस्ति कौशलं शालिप्रस्थेनानेन सम्पन्नमाहारमस्मानभ्यवहारयितुम्' इति। ततस्तया वृद्धदासी - साकूतमालोकिता। तस्य हस्तात् प्रस्थमात्रं धान्यमादाय क्वचिदलिन्दोद्देशे सुसिक्तसंमृष्टे दत्तपादशौचं तमुपावेशयत्।

ततः सा कन्या तान्गन्धशालीन् सङ्क्षुद्य तुषैरखण्डैस्तण्डुलान्पृथक्चकार। जगाद च धात्रीम् - 'मातः, एभिस्तुषैरर्थिनो भूषणमृजाक्रियाक्षमैः स्वर्णकाराः। तेभ्य इमान्दत्वा लब्धाभिः काकिणीभिः काष्ठानि मितम्पचां स्थालीमुभे शरावे चाहर' इति। तथा कृते तया तांस्तण्डुलानसकृदद्भिः प्रक्षाल्य क्वथित पञ्चगुणे जले प्राक्षिपत्। समपक्वेषु सिक्थेषु इन्धनान्यम्भसा समभ्युक्ष्य कृष्णाङ्गारीकृत्य तदर्थिभ्यः प्राहिणोत्।

एभिर्लब्धाः काकिणीर्दत्वा शाकघृतदधि च यथालाभमानय' इति। तथानुष्ठिते च तया द्वित्रानुपदंशानुपपाद्य धात्रीमुखेन स्नानाय तमचोदयत्। स्नातः सिक्तमृष्टकुट्टिमे फलकमारुह्य कदलीपलाशस्योपरि शरावद्वयं दत्तमभिमृशन्नतिष्ठत्। ततस्तस्य शाल्योदनस्य दर्वीद्वयं दत्वा सर्पिर्मात्रां सूपमुपदंशं चोपजहार। सशेष एवान्धस्यासावतृप्यत्। अयाचत च पानीयम्।

वृद्धया च तदुच्छिष्टमपोह्य हरितगोमयोपलिप्ते कुट्टिमे स्वमेवोत्तरीयकर्पटं व्यवधाय क्षणमशेत। परितुष्टश्च विधिवदुपयम्य कन्यां निन्ये। सापि तत्र पतिं दैवतमिव मुक्ततन्द्रा पर्यचरत्। गृहकार्याणि चाहीनमन्वतिष्ठत्। परिजनं च आत्माधीनमकरोत्। तद्गुणवशीकृतश्च भर्ता सर्वमेव कुटुम्बं तदायत्तमेव कृत्वा तदेकाधीनजीवितशरीरस्त्रिवर्गं निर्विवेश। तद् ब्रवीमि - 'गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः' इति।

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

अनेककोटिसारः	—	बहुकोटि मूल्यधनयुक्तः, कई करोड़ संपत्तिवाला।
अननुगुणदाराणाम्	—	न अनुगुणाः अनुकूलाः दाराः भार्या येषाम्, प्रतिकूल पत्नी वालों का।
गुणवद्	—	गुण+मतुप्, सद्गुणों से युक्त।
समीक्ष्य	—	सम्+ईक्ष+ल्यप् , देखकर।
परप्रत्ययाहृतेषु	—	परस्य अन्यस्य प्रत्ययेन विश्वासेन आहृतेषु आनीतेषु, अन्य व्यक्ति के विश्वास से लाई गई।
यादृच्छिकीम्	—	अभीष्ट, मनोनुकूल।
अनभिसमीक्ष्य	—	न अभिसमीक्ष्य, अभि+सम्+ईक्ष्+क्त्वा >ल्यप्, न देखकर।
कार्तान्तिकः	—	कार्तान्तिको लक्षणज्ञः इति वैजयन्ती, सामुद्रिकशास्त्र का जानकार।
वस्त्रान्तपिनद्धशालिप्रस्थः	—	वस्त्रस्य अन्तेन प्रान्तेन पिनद्धम् शालिप्रस्थम् धान्यविशेषः येन सः, वस्त्र के छोर से चार सेर भर शालि (एक प्रकार का अन्न) बाँधकर।

अभ्यवहारयितुम्	–	भोजयितुम् अभि +अव+हृ+णिच+तुमुन्, भोजन कराने को।
अवधूतः	–	तिरस्कृत, अव+धू+क्त।
प्रविश्य	–	प्र+विश्+क्त्वा > ल्यप्, प्रवेशकर।
शिविषु	–	कावेरी नदी के दक्षिण तटवर्ती शिवि नामक देश विशेष में।
अवसितमहर्द्धिम्	–	अवसिता समाप्ता महती ऋद्धिः सम्पत्तिः यस्याः ताम्, जिसका महान् वैभव समाप्त हो गया हो।
प्रदर्श्यमानाम्	–	प्र+दृश् +णिच्+शानच्, दिखाई जाने योग्य।
ददर्श	–	दृश् धातु, लिट् लकार, प्र.पु., एकवचन, देखा।
संसक्तचक्षुः	–	संसक्ते लग्ने चक्षुषी नेत्रे यस्य सः, आसक्त नेत्र।
विकटाः	–	कुरूप।
मृजावन्तः	–	मृजा+ मतुप्, स्वच्छ, निर्दोष।
अनुशयपरम्पराः	–	अनुशयानां पश्चात्तापानां परम्पराः सन्ततयः, पश्चात्तापो की शृंखलाएं।
साकूतम्	–	आकूतेन सहितम्, साभिप्रायम्, अभिप्राय के साथ।
आदाय	–	आ+दा+ क्त्वा >ल्यप् , लेकर।
अलिन्दोद्देशे	–	द्वारोपान्तप्रदेशे, द्वार के निकट।
दत्तपादशौचम्	–	दत्तं पादशौचं पादप्रक्षालनाय जलं यस्मै तम्। (शक्तिकुमारम्) पैर धोने के लिए जिसे जल दे दिया गया था उसे।
उपावेशयत्	–	उप्+विश्+णिच् लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, बिठा दिया।
सङ्क्षुद्य	–	सम्+क्षुद् + क्त्वा >ल्यप्, कुट्टयित्वा, कूटकर।
चकार	–	कृ धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, किया।
जगाद	–	गद् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, कहा।

दत्वा	–	दा+क्त्वा, देकर।
लब्धाभिः	–	लभ्+क्त्+टाप्, तृतीया बहुवचन।
काकिणीभिः	–	मुद्रा विशेषैः, कौडियों से।
मितम्पचाम्	–	मितम् अल्पम् पचति इति, थोड़ी वस्तु पकाने योग्य।
स्थालीम्	–	पकाने वाला पात्र।
शरावे	–	मृत्पात्रे, मिट्टी के दो प्याले।
असकृत्	–	न सकृत्, अनेकवार।
अद्भिः	–	अप् शब्द तृतीया विभक्ति बहुवचन, जल से।
प्रक्षाल्य	–	प्र+क्षाल् +क्त्वा > ल्यप् , धोकर।
प्राक्षिपत्	–	प्र+क्षिप् धातु, लङ्. लकार, प्रथम पुरुष्, एकवचन, डाल दिया।
सिक्थेषु	–	भक्तेषु, भात के।
समभ्युक्ष्य	–	सम्+अभि+उक्ष्+क्त्वा >ल्यप् , भिगोकर।
कृष्णाङ्.गारीकृत्य	–	कोयला बनाकर, कृष्णाङ्.गारं कृत्वा।
प्राहिणोत्	–	प्रैषयत्, भेज दिया, प्र+हि+लङ्. लकार, प्रथम पुरुष, ए.व.।
उपदंशान्	–	शाकादीन्, शाकादि व्यंजनों को।
उपपाद्य	–	पक्त्वा, पकाकर, उप+पद्+णिच्+क्त्वा >ल्यप्।
दर्वीद्वयम्	–	दर्वीद्वयगृहीतम्, दो करछुलभरा।
सर्पिर्मात्राम्	–	अल्पम् घृतम्, थोड़ा घी।
अन्धसि	–	ओदने, भोज्य अन्न के।
पानीयम्	–	पा+अनीयर्, पेयजल।
अपोह्य	–	अप्+वह् +क्त्वा >ल्यप् , दूरीकृत्य, दूर हटाकर।
व्यवधाय	–	वि+अव् +धा+क्त्वा >ल्यप्, आस्तीर्य बिछाकर।
अहीनम्	–	न हीनम् इति, सुचारू रुप से।
त्रिवर्गम्	–	धर्म,अर्थ तथा काम पुरुषार्थों को।

निर्विवेश	–	निर्+विश्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, भुक्तवान्, भोगने लगा।
प्रियहिताय	–	प्रियं च तत् हितं च प्रियहितम् तस्मै, प्रिय और हित के लिए।
गृहिणः	–	गृह + इन्, षष्ठी विभक्ति एकवचन, गृहस्थ के।

अभ्यासः

1. **संस्कृतेन उत्तरं दीयताम्**
   (क) अयं पाठः कस्मात् ग्रन्थात् सङ्कलितः? कश्च तस्य रचयिता?
   (ख) शक्तिकुमारः कुत्र अवसत्?
   (ग) शक्तिकुमारस्य का चिन्ता आसीत्?
   (घ) कार्तान्तिकः कः उच्यते?
   (ङ) कावेरीपत्तने शक्तिकुमारः कीदृशीं कन्यां ददर्श?
   (च) अनुशयपरम्पराः केषाम् आपतन्ति?
   (छ) इन्धनानि अम्भसा समभ्युक्ष्य कन्या किमकरोत्?
   (ज) परितुष्टः शक्तिकुमारः किमकरोत्?
2. **रिक्तस्थानानि पूरयत**
   (क) शक्तिकुमारः भुवं ....।
   (ख) .... कन्यां दृष्ट्वा स ब्रवीति स्म।
   (ग) अस्याः खलु सर्वे .... नातिस्थूलाः।
   (घ) सापि तत्र पतिं .... पर्यचरत्।
   (ङ) .... प्रियहिताय दारगुणाः।
   (च) भर्ता सर्वमेव कुटुम्बं तदायत्तमेव कृत्वा .... निर्विवेश।
3. **तात्पर्यम् विशदीक्रियताम्**
   (क) नास्त्यदाराणामननुगुणदाराणां वा सुखं नाम।
   (ख) सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम्।
   (ग) अविमृश्यकारिणां हि नियतमनेकाः पतन्त्यनुशयपरम्पराः।

(घ) भर्ता त्रिवर्गं निर्विवेश।

(ङ) गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः।

4. **प्रकृतिप्रत्ययविभागः क्रियताम्**

भूत्वा, कन्यावन्तः, लक्षणवती, परीक्ष्य, सम्पन्नम्, समपक्वेषु, लब्धाः, स्नातः, शक्नोषि, संमृष्टे, परितुष्टः, मुक्ततन्द्रा, ब्रवीमि, गृहिणः।

5. **पाठस्य कथासारः संक्षेपेण वर्णनीयः।**

दशमः पाठः

मानो हि महतां धनम्

प्रस्तुत पाठ महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत के उद्योग पर्व के 131-134 अध्यायों से संकलित है। इसमें क्षात्र धर्म के कर्त्तव्यों का उपदेश देती हुई कुन्ती के पुरातन इतिहास का उल्लेख करते हुए विदुरा द्वारा सिंधुराज से युद्ध में परास्त अपने पुत्र को, कायरता का त्याग कर, अपने स्वाभिमान को पुनः प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है।

इस पाठ के श्लोकों में कुल के उत्थान, दान, तप एवं शौर्य की महिमा का वर्णन किया गया है तथा मानव के पौरुष के स्वरूप का वर्णन है।

- (उद्योग पर्व, 131 अध्याय)

कुन्ती उवाच—

क्षात्रधर्मरता धन्या विदुरा दीर्घदर्शिनी।
विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता।।1।।
विदुरा नाम वै सत्या जगर्हे पुत्रमौरसम्।
निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम्।
अनन्दनमधर्मज्ञं द्विषतां हर्षवर्धनम्।।2।।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः।
अमित्रान्नन्दयन्सर्गन्निर्मानो बन्धुशोकदः।।3।।
उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम्।
धर्मं पुत्राग्रतःकृत्वा किं निमित्तं हि जीवसि।।4।।
कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः।

उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि।।5।।
यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम्।
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान्।।6।।
दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं यशः।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः।।7।।
य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम्।
अमात्यानामथो हर्षमादधात्यचिरेण सः।।8।।

पुत्रः उवाच –
किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वथा।
किमाभरणकृत्यं ते किं भोगैर्जीवितेन वा।। 9।।
माता उवाच –
यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि संजय।
पक्वं द्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत्।। 10।।
स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः।
स लोके लभते कीर्त्तिं परत्र च शुभां गतिम्।।11।।
कुन्त्युवाच–
सदश्व इव स क्षिप्तः प्रणुन्नो वाक्यसायकैः।
तच्चकार तथा सर्वं यथावदनुशासनम्।। 12।।

- (उद्योग पर्व, 134 अध्याय)

शब्दार्थाः टिप्पणयश्च

क्षात्रधर्मरता — क्षत्रस्य धर्मः, क्षात्रधर्मः तस्मिन् रता, (तत्पुरुष समास), क्षात्र धर्म का पालन करने वाली।

दीर्घदर्शिनी	—	दीर्घं द्रष्टुम् शीलं यस्याः सा, (उपपद तत्पुरुष), (भविष्य का चिन्तन करने वाली)।
विश्रुता	—	प्रसिद्ध ।
राजसंसत्सु	—	राज्ञः संसत्सु (सप्तमी तत्पुरुष) राज्य सभाओं में।
श्रुतवाक्या	—	निपुण (श्रुतानि वाक्यानि यया सा) न्याय पारंगत।
बहुश्रुता	—	विदुषी।
सत्या	—	सत्य भाषण करने वाली।
जगर्हे	—	गर्ह्, लिट् लकार , प्र.पु., ए.व., निंदा की।
औरसम्	—	उरसः जातम् - सगे बेटे को।
निर्जितम्	—	परास्त, हारे हुए।
शयानम्	—	सोते हुए, लेटे हुए, शीङ्शानच्, द्वितीया, एकवचन।
दीनचेतसम्	—	दीनं चेतः यस्य सः तम् बहुब्रीहि, उदास हृदय वाले।
अनन्दनम्	—	न नन्दनम्, दूसरों को अप्रसन्न करने वाले।
अधर्मज्ञम्	—	धर्मम् जानाति धर्मज्ञः, न धर्मज्ञः, अधर्मज्ञः तम् धर्म को न जानने वाले को।
द्विषताम्	—	शत्रुओं के।
हर्षवर्धनम्	—	हर्षं वर्धयति तम्, प्रसन्न करने वाले।
शेष्व	—	लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन, सोओ।
अमित्रान्	—	शत्रुओं को।
नन्दयन्	—	प्रसन्न करते हुए।
निर्मानः	—	निर्गतो मानो यस्य सः, सम्मान रहित।
उद्भावयस्व	—	उद्+भू+णिच्(प्रेरणार्थक्) लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन, प्रकट करो।
विद्धि	—	विद् +लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।
मग्नम्	—	डूबे हुए (अवनत हुए कुल को)।
संख्यावर्धनमात्रम्	—	मात्र संख्या बढ़ाने वाले।

शौर्यम्	–	शूर + ष्यञ्, शौर्यम् तस्मिन्, वीरता में।
प्रथितम्	–	फैले हुए, प्रसिद्ध।
उच्चारः		मल, विष्ठा।
हित्वा	–	हा + क्त्वा, छोड़कर।
मृगयते	–	खोजता है।
आदधाति + अचिरेण	–	उत्पन्न करता है , धारण करता है , शीघ्र।
अपश्यन्त्या	–	न पश्यन्त्या, दृश् +शतृ, स्त्री. तृतीया, एकवचन, न देखते हुए।
आभरणकृत्यम्	–	आलंकारिक कार्य।
आजीवन्ति	–	आश्रय लेते हैं, सहारा लेते हैं।
पक्वम्	–	पच्+क्त, पका हुआ।
आसाद्य	–	आ+सद्+णिच्+क्त्वा >ल्यप् , पाकर।
अर्थवत्	–	सफल।
अभ्युज्जीवति	–	जीवित रहता है।
परत्र	–	परलोक में।
सदश्वः	–	अच्छा घोड़ा।
प्रणुन्नः	–	प्र+ नुद् + क्त, पुं., प्रथमा, एकवचन, प्रेरित किया हुआ।
वाक्यसायकैः	–	वाणी के बाणों से।
तच्चकार	–	तत्+चकार, किया।

अभ्यासः

1. अधोलिखितानां प्रश्नानाम् उत्तरं संस्कृतेन देयम्

(क) मानो हि महतां धनम् इत्ययं पाठः कस्माद् ग्रन्थात् संकलितः?

(ख) विदुरा कुत्र विश्रुता आसीत्?

(ग) विदुरायाः पुत्रः केन पराजितः अभवत्?

(घ) कः स्त्री पुमान् वा न भवति?
(ङ) कः अमात्यानां हर्षं न आदधाति?
(च) अपुत्रया मात्रा किम् आभरणकृत्यं न भवति?
(छ) कस्य जीवितम् अर्थवत् भवति?

2. **रिक्तस्थानानाम् पूर्तिः विधेया**

(क) विदुरा औरसम् पुत्रं ....।
(ख) हे कापुरुष .... मा शेष्व।
(ग) त्वत्कृते स्वयमेव मग्नं .... उद्भावय।
(घ) यः प्रियसुखे.................. श्रियम् मृगयते।
(ङ) मामपश्यन्त्या .... अपि सर्वथा किम्?
(च) सर्वभूतानि .... यमाजीवन्ति।
(छ) स यथावत् .... चकार।

3. **अधोलिखितानां शब्दानां विलोमान् लिखत**

विश्रुता, सत्या, अधर्मज्ञम्, अमित्रान्, कापुरुषः, प्रथितं, यशः, अचिरेण, आसाद्य।

4. **पञ्चभिः वाक्यैः विदुरायाः चरित्रम् वर्णयत**

परिशिष्ट-1

छंद-परिचय

क. वैदिक छंद

वैदिक मंत्रों में गेयता का समावेश करने के लिए जिन छंदों का प्रयोग हुआ है उनमें गायत्री, अनुष्टुप् तथा त्रिष्टुप् प्रमुख हैं।

गायत्री

लक्षण : जिस छंद के तीन चरण हों, प्रत्येक चरण में आठ अक्षर हों वह गायत्री छंद होता है। इसका पाँचवाँ वर्ण लघु तथा छठा वर्ण गुरु होता है। उदाहरण -

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।।

अनुष्टुप्

लक्षण : अनुष्टुप् छंद में चार चरण होते हैं, प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते हैं। समस्त चरणों का पाँचवाँ वर्ण लघु तथा छठा वर्ण गुरु होता है। प्रथम तथा तृतीय चरण का सातवाँ वर्ण गुरु तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण का सातवाँ वर्ण लघु होता है। उदाहरण-

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।।

त्रिष्टुप्

लक्षण : जिस छंद के चार चरण हों और प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर हों वह त्रिष्टुप् छंद होता है। उदाहरण -

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

ख. लौकिक छंद

प्रस्तुत पुस्तक के अनेक पाठों में अनेक लौकिक छंदों को भी संकलित किया गया है। अतः संकलित श्लोकों के छंदों के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत हैं -

1. अनुष्टुप् - (आठ अक्षरों वाला समवृत्त)

लक्षण : अनुष्टुप् छंद के सभी चारों चरणों का पाँचवाँ वर्ण लघु, छठा वर्ण गुरु तथा प्रथम एवं तृतीय चरण का सातवाँ वर्ण गुरु और द्वितीय एवं चतुर्थ चरण का सातवाँ वर्ण लघु होता है। इसे श्लोकछंद भी कहते हैं। उदाहरण-

पतितैः पतमानैश्च, पादपस्थैश्च मारुतः।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे ! क्रीडन्निव समन्ततः।।

2. इन्द्रवज्रा -(ग्यारहवर्णों वाला समवृत्त)

लक्षण : जिस छंद के प्रत्येक पाद में दो तगण, एक जगण और दो गुरु वर्ण क्रम से हों वह इन्द्रवज्रा छंद होता है। **स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।** उदाहरण—

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः, सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थश्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः।।

3. उपेन्द्रवज्रा - (ग्यारहवर्णों का समवृत्त)

लक्षण : जिस छंद के प्रत्येक पाद में क्रमशः एक जगण, एक तगण , एक जगण और दो गुरु वर्ण हों वह उपेन्द्रवज्रा छंद होता है। **उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।** उदाहरण -

स्मरामि न प्राणिवधं यथाहं सञ्चिन्त्य कृच्छ्रे परमेऽपि कर्तुम्।
अनेन सत्येन सरांसि तोयैरापूरयन् वर्षतु देवराजः।।

इस छंद के प्रथम तथा तृतीय चरण उपेन्द्रवज्रा छन्दानुसार तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण इन्द्रवज्रानुसार हैं। अतः इसे उपजाति छंद भी कहा जा सकता है।

4. उपजाति - (ग्यारह वर्णों वाला समवृत्त)

लक्षण : जिस छंद में इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के चरणों का मिश्रण होता है वह उपजाति छंद होता है।

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।

उदाहरण –

जलं प्रसन्नं कुसुमं प्रहासं क्रौञ्चस्वनं शालिवनं विपक्वम्।
मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम्।।

इसके प्रथम एवं तृतीय चरण उपेन्द्रवज्रा तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण इन्द्रवज्रा छंदानुसार हैं, जिससे यह उपजाति छंद है।

5. मालिनी (पन्द्रह वर्णों वाला समवृत्त)

लक्षण : जिस छंद के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो नगण, एक मगण तथा दो यगण हों वह मालिनी छंद होता है। इसके प्रत्येक चरण में आठवें तथा तदनंतर सातवें अर्थात् चरण के अंतिमवर्ण पंद्रहवें वर्ण के बाद यति (विराम) होती है।

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

उदाहरण –

मम हि पितृभिरस्य प्रस्तुतो ज्ञातिभेदस्तदिह मयि तु दोषो वक्तृभिः पातनीयः।
अथ च मम स पुत्रः पाण्डवानां तु पश्चात् सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः।।

परिशिष्ट-2

अलंकार

लोक में जिस प्रकार आभूषण शरीर की शोभा बढ़ाने में सहायक होते हैं उसी प्रकार काव्य में उपमादि अलंकार उसकी चारुता की अभिवृद्धि करते हैं।

शब्द तथा अर्थ को काव्य का शरीर कहा गया है। अतः काव्य-शरीर का अलंकरण भी शब्द तथा अर्थ दोनों रूपों में होता है। जो अलंकार शब्दों की चारुता की अभिवृद्धि करते हैं वे शब्दालंकार कहे जाते हैं जैसे अनुप्रास, यमक आदि। जो अलंकार अर्थ की चारुता की अभिवृद्धि करते हैं वे अर्थालंकार कहे जाते हैं, जैसे उपमा, रूपक आदि। इन दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रस्तुत संकलन के पाठों में प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

अनुप्रास : वर्णसाम्यमनुप्रासः।

समान वर्णों की आवृत्ति को अनुप्रास अलंकार कहा जाता है।

उदाहरण -

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवंगाः।।

इस श्लोक में आए हुए वहन्ति, वर्षन्ति, नदन्ति, भान्ति, ध्यायन्ति, नृत्यन्ति तथा समाश्वसन्ति इन शब्दों में अनेक वर्णों की समान आवृत्ति है जो श्लोक की चारुता की अभिवृद्धि में सहायक है। अतः यहाँ पर अनुप्रास अलंकार है।

यमक : सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ।। साहित्यदर्पणम्

जब वर्ण समूह की उसी क्रम से पुनरावृत्ति की जाए किंतु आवृत्त वर्ण समुदाय या तो भिन्नार्थक हो या अंशतः अथवा पूर्णतः निरर्थक हो तो यमक अलंकार कहलाता है। उदाहरण -

प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम्।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान् गिरिः।।

इस श्लोक में हिमवान् शब्द की आवृत्ति हुई है और दोनों पद भिन्नार्थक हैं। अतः यहाँ पर प्रयुक्त अलंकार यमक है जो श्लोक के सौंदर्य की अभिवृद्धि में सहायक है।

उपमा : साधर्म्यमुपमा भेदे। – काव्य प्रकाशः, 10.87
दो वस्तुओं में, भेद रहने पर भी, जब उनका साधर्म्य प्रतिपादित किया जाता है तो वहाँ उपमा अलंकार होता है। उदाहरण -

रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते।।

यहां पर सूर्य के प्रकाश से मलिन चन्द्रमा की उपमा निःश्वासों से मलिन आदर्श (दर्पण) से दी गई है। यह उपमा श्लोक के अर्थ की चारुता की वृद्धि में सहायक है।

रूपक :तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः। – काव्यप्रकाशः, 10.93
अतिशय सादृश्य के कारण जहाँ उपमेय को उपमान का रूप दे दिया जाये अथवा उपमेय पर उपमान का आरोप कर दिया जाये वहाँ रूपक अलंकार होता है। उदाहरण-

अनलंकृतशरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति मम हृदयम्।

सौवर्णशकटिका पाठ के इस वाक्य में प्रयुक्त चंद्रमुख शब्द में रूपक अलंकार है। यहाँ पर मुख पर चंद्रमा का आरोप होने से रूपक अंलकार है ।

उत्प्रेक्षा : सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। - काव्यप्रकाशः, 10.92
उपमेय की उपमान के रूप में संभावना को उत्प्रेक्षा उलंकार कहते हैं। उदाहरण -

पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे ! क्रीडन्निव समन्ततः।।

यहां पर वायु के द्वारा पुष्पों के साथ की जाने वाली क्रीडा की सम्भावना में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास : भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा। चन्द्रालोक, 5.66
मुख्य अर्थ का समर्थन करने वाले अर्थान्तर (दूसरे वाक्यार्थ) का प्रतिपादन (न्यास) अर्थान्तरन्यास कहलाता है। उदाहरण -

यः स्वभावो हि यस्यास्ति स नित्यं दुरतिक्रमः।
श्वा यदि क्रियते राजा तत्किं नाश्नात्युपानहम्।।

यहाँ पर प्रथम चरण के वाक्यार्थ का समर्थन द्वितीय चरण के वाक्यार्थ द्वारा किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

अतिशयोक्ति : सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिनिर्गद्यते।साहित्यदर्पणम्, 10.46
अध्यवसाय के सिद्ध होने पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है। अध्यवसाय का तात्पर्य है- उपमेय के निगरण के साथ उपमान से अभेद का आरोप अर्थात् उपमेय तथा उपमान में अभेद की स्थापना। उदाहरण -

यूथेऽपयाते हस्तिग्रहणोद्यतेन केन कलभो गृहीतः।

यहाँ पर अर्जुन को हस्ती तथा अभिमन्यु को कलभ (हाथी का बच्चा) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार उपमेय अर्जुन व अभिमन्यु का निगरण कर उन्हें उपमान हस्ती तथा कलभ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

परिशिष्ट-3

अनुशंसित ग्रंथ

क्र.सं.	ग्रन्थनाम	लेखक	संपादक/प्रकाशक
1.	ऋग्वेद	....	सं प्र. एन.एस.सोनटक्के, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना -2, 1946
2.	यजुर्वेद	उव्वटमहीधरभाष्य	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी,1912
3.	अथर्ववेद	....	सातवलेकर, पारडी, 1957
4.	रामायण	वाल्मीकि	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1977
5.	पञ्चरात्र	भास	भासनाटकचक्रम्,सं. सी.आर.देवधर ओरियण्टल बुक ऐजन्सी , पूना, 1954
6.	महाभाष्य	पतंजलि	चारुदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1978
7.	जातकमाला	आर्यशूर	सूर्यनारायण चौधरी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971
8.	मृच्छकटिक	शूद्रक	निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई
9.	हितोपदेश	नारायण शर्मा	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
10.	चरकसंहिता	चरक	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1984
11.	दशकुमारचरित	दण्डी	श्रीविश्वनाथ झा (सं.), मोतीलाल बनारसीदास, 1971
12.	कथासरित्सागर	सोमदेव	मोतीलाल बनारसीदास, 1970

13. **Sanskrit Drama in its Origin, Development and Theory**	A.B.Keith.	Oxford Press, London, 1924
14. **संस्कृत नाटक** (हिन्दी अनुवाद),	ए.बी.कीथ	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, अनु. उदयभानुसिंह
15. **संस्कृत साहित्य का इतिहास,**	बलदेव उपाध्याय,	शारदा मंदिर, वाराणसी, 1973
16. **वैदिक साहित्य और संस्कृति**	बलदेव उपाध्याय,	शारदा मंदिर, वाराणसी, 1973
17. **History of Classical Sanskrit Literature,**	M. Krishna-macharya,	Moti Lal, Banarsidas, Delhi
18. **A History of Sanskrit Literature,**	A.A. MacDonell,	Moti Lal, Banarsidas, Delhi, 1962
19. **संस्कृत साहित्य का इतिहास**	वाचस्पति गैरोला	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1978
20. **संस्कृत साहित्य की संक्षिप्त रूपरेखा**	चन्द्रशेखर पाण्डेय	साहित्य निकेतन, कानपुर, 1964